अभिमन्यु नाटक।

॥ श्रीः ॥

समर्पण।

श्री १०८ क्षत्रिय—कुल—कमल—दिवाकर गुणिगण गणनीय गुणाकर, करुणासागर, हिन्दी साहित्य रसाब्धिपारीण, सज्जन-प्रतिपालक, रामपुराधीश, हिन्दोस्थान सम्पादक श्रीमान् आनरेबल राजा रामपालसिंहजी महोदयेषु।

राजन्!

जिस समय विचार करता हूं कि, श्रीमान् इंग्लैण्डसे अनेक भाषा और विद्या सीखकर इस देशका हित कर रहे हैं तब अत्यानन्द प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त निर्मल उदारचरित्र, मनःसंयमकारी असाधारण सामर्थ्य विज्ञानचर्चा आनंदनीय उत्साह व जीवन व्यापीचेष्टा इत्यादि गुणभी आपमें वर्तमान हैं।

मुझ अकिञ्चन जनकी यही इच्छा है कि, इन असाधारण सद्गुणसमूहद्वारा श्रीमान् स्वदेश और स्वभाषाका सदा कल्याण करते रहैं।

भवदीय दयादाक्षिण्य व देशहितैषिता निहारकर यह सामान्य नाटक श्रीमान्‌के करकमलमें अर्पित है. आशा है कि स्वीकृत होगा.

सर्वदा श्रीमान्‌का शुभचिन्तक—

शालिग्राम वैश्य,

मोहल्ला दीन्दारपुरा—मुरादाबाद.

श्रीः ।

उपोद्घात ।

देखो उस सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी महिमा कैसी अद्भुत और प्रशंसनीय है, जो सदा संसारमें नानाप्रकारके नये नये कौतुक दिखाती रहती हैं। सबको विदित है कि, संवत् १९३७ भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णमासी शुक्र शनैश्चरवारोंको इस प्रकार वर्षा हुई कि, जिसका वर्णन करते जिह्वा तुतलाती है और बुद्धि चकराती है, बार बार मनमें आता है कि, कुछ कहूं, परन्तु मनकी मनमें रहजाती है कौन कहै! जिह्वा तो पानीका अथाह प्रवाह देख कपकपाती है, निदान हार मानकर कहना पडा, दो तीन दिन इस जोरशोरसे जल बरसा कि, बडे बडे ऊंचे ऊंचे मन्दिर ढयढयकर पानीमें लय होगये, ऐसी तीव्र वर्षाका किसीको स्वप्नमें भी ध्यान नहीं था, परन्तु भगवान्की गति किसीसे जानी नहीं जाती महा अपरम्पार है, मुरादाबादमें इस प्रकार हाहाकार मचा कि, सब नर नारियाँ हारकर मन मारमार बैठ रहे और पुकार करने लगे कि, हे कर्तार! इस प्रकार मूसलधार जलसे हमारा उद्धार कर, हमको घरके द्वारभी पहाडकी समान जान पडते हैं, नगरकी गलियें नदियेंसी दिखाई देती हैं, सब स्त्रियें अपने अपने मन्दिरोंमें बैठी घबराती थीं और सब लोग परमेश्वरसे अरदास लगा रहे थे, किसी ढब अबके इस महाप्रलयके जलसे हमारा निस्तारा कर, सब स्त्री पुरुष इस शोकसागरमें डूबे पडे थे और अनेक प्रकारके विचार कर रहे थे। इतनेमें

क्या दृष्टि आया कि, रामगंगा महारानी जगत्सुखदानीकी धार बडे तीव्र प्रवाहसे उमडती घुमडती, बनवाटिकाओंको उजाडती खेतीको बिगाडती दोनों किनारोंको झाडती पृथ्वीको चीरती फाडती, पहाडोंको उखाडती, वृक्षोंको तोडती ताडती, सिंहकी समान दहाडती, चली आती है;और चार२ कोशके निकटवर्ती ग्रामोंको जडसे खोती,दमदमें पर होती, बँगले गाँवोंको डुबोती, किनारेके स्थानोंको रेतमें मिलाती, लालबाग और मोतीबागके नीचे होती, रानीजीकी पौरियोंको धोती चली जाती हैं; एक आनकी आनमें सैकडों स्थान गिरादिये. आगे रुस्तमखानी किले-के सामरिक अड्डे (बुर्ज) में शिल्पकारोंने एक ऐसी अनुपम खिडकी बनाई थी उसके बनानेका यह तात्पर्य था कि जिसस-मय इस खिडकीमें रामगंगाका पानी आजायगा उस दिन सम-झना कि, आज प्रयाग (इलाहाबाद) डूबजायगा. उस मोरीमें एक हाथ (आधा गज) ऊंचा पानी चढगया, यह दशा देख वृद्ध वृद्धा मनुष्य आश्चर्य करते थे और दांतोंके बीच उंगली धरते थे कि, हे परमेश्वर ! क्या महाप्रलयका दिन आजही होगा ? किलेके नीचे जो नावोंका पुल था उसको तोडकर ऐसा बगेला कि, आजतक उन नावों और मल्लाहोंका पता और चिह्न भी न मिला, इस प्रकार देहली घाटको तोडती फोडती लाखों बाँसोंकी कोठी और काठकी कडियोंको भंग तोडती हुई चलीगई; उस समय सम्पूर्ण खादरमें जल ऐसे दिखाई देता था जैसे पृथ्वीपर चादर बिछरही है ।

जो दो दो चार चार कोसके समीप गांव थे उनको पानीके रेलेसे बहाकर, घरोंको गिराकर, स्त्री पुरुषोंको डुबाकर मट्टीमें मिलादिया, जो कुछ बचे बचाये शेष रहे वह रोते चिल्लाते हाहाकार मचाते बालबच्चोंसे नाता तोड, जीनेकी आशा छोड, बहतेहुए छप्परोंपर बैठ बैठकर चलदिये, कोई कोई विपत्तियोंके मारे वृक्षोंपर जा चढे, किसीको कुछ आश्रय न मिला तो पानीहीमें पैरनेलगे उस समय सबको अपने अपने प्राणोंका ध्यान न था कोई किसीका मित्र और पुत्र नहीं था कोई कोई उछलते डूबते इस दोहेको पढते चले जाते थे ॥

दोहा-अरे विधाता ! निर्दयी, कबकबके लिये बैर ।
सब घरसे बिछुरन भयो, तऊ न तनकी खैर ।

कोई कहता था अरे मूर्खों ! क्यों किसीको वृथा दोष देते हो ?

दोहा-विधनाको कहुँ दोष है, सकल कर्मके दोष ।
मनकी मनहीमें रही, यही बडा अफसोस ॥

कोई कहता था कि, हम किसीको दोष नहीं देते ॥

दोहा-जो कछु लिखा लिलाटमें, मेट सके नहिं कोय ।
रोयेसे कह होत है, होनी होय सो होय ।

कोई कहता जाता था कि,प्राचीन समयके पुरुषोंसे सुना करते थे कि एक दिन प्रलय होगी,परन्तु यह नहीं जानते थे कि प्रलय आजही हो जायगी,इस प्रकार बकते झकते सहस्रों स्त्री पुरुष बहे चले जाते थे, हजारों गाय, भैंस,बैल, बकरी इत्यादि पशु बहगये, हजारों कीकरोंके पेडोंमें उलझकर रहगये पानी क्या, महाप्रलयकी सेनाका अग्रभाग था.

इस दुर्दशाको देख दयानिधान परमसुजान श्रीमान् मजिस्ट्रेट साहबने आनकर पैरैयोंको आज्ञा दी कि,जो कोई मनुष्य गाय, भैंसोंको निकालेगा वह पारितोषिक पावैगा.

उस समय सहस्रों पैरइये और डुबकी लगानेवाले लँगोट बाँध बाँध पानीमें कूद पडे, गाय भैंसोंको निकाल निकाल कांजी होसमें पहुँचाने लगे और स्त्री पुरुषोंको तहसीलमें लाने लगे। इतने स्त्री पुरुष और गाय ढोरोंको निकाला कि, मनुष्योंसे सब तहसील भरगई और पशुओंसे कांजी होसमें ठौर न रहा, उस समय कितनेही मनुष्य बालबच्चोंके बिछोहसे और घरके मोहसे व्याकुल होरहे थे, दूसरे क्षुधाकी पीडा शरीरको घबराये देतीथी उनके हाहाकारके शब्दसे सबका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था और जब वह पुकार पुकार और शिरमें दुहत्थड मार मार यह दोहा पढते थे।

दोहा–पुत्र छुटे बान्धव छुटे, छुटे ग्राम अरु धाम ॥
मौत हमारे बाँटकी, कहाँ गई हे राम ॥

उस समय ऐसा कौन प्राणी था कि, जिसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा नहीं बहती थी, उनका अत्यन्त कुलाहल सुनकर श्रीमान् तहसीलदार साहबने पाव पाव भर चबेना सबको दना आरम्भ किया,कोई लेता था और उसको देख रो देता था कोई कहता था कैसा चबैना ? हम तो पहिलेही अपने बालकोंका चबैना करचुके, अब हमारा चबैना परमेश्वरके घर होगा, यह कहकर एकाएक दाढें मार मार रोने लगते थे।

इधर तो लोक इस शोक सन्तापके मारे अपने २ आँगनमें बैठे विचारही रहेथे कि, क्या करें ? इतनेमें उधरसे गाँगन इस धूमधामके साथ आई कि, सब जंगलकी खेतीको रेतीमें मिलाती, आठ २ कोसीके गावोंको डुबाती, मनुष्य और पशुओंको बहाती, किनारोंको ढहाती चलीआती थी, पुल तोड सडक फोड, रामगंगाकी होडकर वान और करलेसे मिल मुरादाबादकी ओरको सीधी चली तो नगरको आन दबाया, उधर वह पानी पुरानी सडकपर होकर रेलके स्टेशनकी ओरको चला, उस समय सब रेलवेके दफतरवालोंकी बुद्धि चकित थी रेलमास्टर भागा भागा फिरता, सिपाही और अनुचर पानीको देख देख घबराते थे; थोडी देर उपरान्त रेलकी सडकको डुबो नये बाजारकी ओरको पानी चल दिया ।

जब नये बाजारकी दूकानोंके नीचे पानी आया, तब तो सब बाजारमें त्राहि पडगई, असालतपुरवालोंका जी आपहीको घबराया, अरु लगे अपने अपने अन्न वस्त्र कांखमें दाब दाबकर भागने ।

गाँगनका यह जोरशोर सुन सब नगरनिवासी देखनेको चले जातेथे, अरु परस्पर पुरानी पुरानी कहानी कहतेथे इतनेमें श्रीमान् मजिस्ट्रेटसाहब बहादुर आनकर उपस्थित हुए और कहा-

शेर-सब बजुर्गोंको शहरके कुछ इस्तादाद है ।
इस कदर गांगनके चढनेकी किसीको याद है ॥

कूचे कूचे घूमके फिरता था पानी इस कदर ।
आजकल कश्मीरसे ज्यादः मुरादाबाद है ॥
तुमनेभी इस ढबका पानी पेश्तर देखा कभी ।
पांचसौ छःसौ बरससे शहरकी बुनियाद है ॥
रामगंगाने हजारों घर किये खाने खराब ।
आजकल गांगनका दरजा इससेभी ईजाद है ॥
लाखों जानें खोनेके आईहै गांगन बेशरम ।
खूब समझो प्यारो यह पानी नहीं जल्लाद है ॥
जो कोई इसवक्त बन्दोबस्त पानीका करे ।
सबसे ज्यादः शहरमें वोही बडा उस्ताद है ॥

बडे बडे वृद्धजन जो प्रतिष्ठित थे वह कहनेलगे कि हमारे आगे ऐसा पानी रामगंगा और गाँगनमें आजतक नहीं आया, इसी प्रकार सब देखते दिखाते अपनी अपनी कथायें सुनाते चले जाते थे; इतनेमें पानीने रेलकी सडकको तोड, रेलके पुलको तोड मरोड जोड जोड ढीले करादिये, और बिलारीके स्टेशनतक सडकका चकनाचूर करादिया, और बारह कोसतक जलहीजल दिखाई देता था, उस दिन रेल न चलसकी, डाक बन्द होगई, और अंग्रेजोंमें खलबल पडगई, लोग अपना २ प्रबंध करने लगे और परस्पर कहने लगे कि, न जानिये परमेश्वरको क्या करना है ? हमारी कविमण्डलीके मित्रोंने कहा जो कुछ होगा सो देखाजायगा, परंतु अब सब चलकर रामगंगाका दर्शन करो,वहीं रामचर्चा करते कराते रामगंगाके निकट

पहुँचे प्रथम परमोत्तम सर्वानंददायक अत्यन्त शोभायमान श्रीमान् राजा कृष्ण कुमारके पुष्पोद्यानमें गये, देखा तो वह घने घने वृक्षोंके समूहोंसे संयुक्त होकर अतिशय रमणीय होरहा है, उनपर पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड कलरव कर रहे हैं, मतवाले भौंरे मधुर गुञ्जारसे अपूर्व गान कर रहे हैं, वृक्षोंकी शाखायें प्रवाल और फल फूलोंके भारी भारसे नीचेको झुक रहीं थीं ' मानों फल फूलोंकी अञ्जली लिये, पृथ्वीको अपनी जाननी जानकर समर्पण कर रही हैं, जब हमारे मित्रगण आगेको पधारे तो उनको अपना अतिथि जान धीरे २ पुष्पोंकी वर्षा करनेलगीं मानो स्वस्तिवाचन पढपढकर द्विजवर अपने यजमानोंको पुष्पसहित आशीर्वाद दे रहे हैं, उन पुष्पोंकी सुगंधके भारसे बयारि मन्द मन्द सञ्चार कर रहीथी, मोर मधुर २ वाणीसे ऐसे झिंगार रहे थे, मानो अपने प्यारे मेघोंको पुकार रहे हैं, कभी बीचमें कोकिलाका शब्द सुनाई आता उस समय मुरली मनोहरकी मुरलीका ध्यान होता था, दादुरकी ध्वनिसे यह विदित होता था, मानों मुनियोंके बालक वेदपाठ कर रहे हैं । उस पुष्पोद्यानके सन्मुख नन्दनवनने भी अपना मुख छिपा हार मान स्वर्गलोकमें जा इन्द्रकी शरण ली कुछ कुछ ऐसा जान पडता है कि उसीकी बातका ध्यान कर महाघोर जल बरसाया ।

आगे एक अत्यन्त मनोहर बारहद्दारी कञ्चनखचित मणि मुक्ताओंसे जटित स्वर्णमय ध्वजा पताकाओंसे भूषित, मणियों-

का ऐसा प्रकाश होरहा था मानो ठौर ठौर तारागण चमक रहे हैं, उसके बीचमें एक रत्नजटित चौकी बिछरही थी, उस-पर श्रीमान् पण्डित ऋषिरामजी बैठे महाभारतका द्रोणपर्व बांच रहे थे और चारों ओर शिष्यमण्डली विद्यमान थी हम सबने दण्डवत् प्रणाम किया; उन्होंने यथायोग्य आशीर्वाद दे बडे आदर सत्कारसे समीप बैठाया उस समय अभिमन्युवधकी कथा होरही थी, कौरवोंकी अनीति सुनकर सबके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे, सुभद्रा और उत्तराका विलाप सुना तो औरभी हृदय विदीर्ण होनेलगा और सब मिलकर पण्डित ऋषिरामजीको धन्यवाद देनेलगे, फिर रामगंगाकी ओरको मुख करके यह श्लोक सब मित्रोंने पढा ॥

श्लोक-विष्णोः संगतिकारिणी हरजटाजूटाटवीचारिणी
प्रायश्चित्तनिवारिणी जलकणैः पुण्यौघविस्तारिणी ॥
भूभृत्कन्दरदारिणी निजजलेमज्जनोत्तारिणी
श्रेयःस्वर्गविहारिणी विजयतेगंगामनोहारिणी ॥ १ ॥

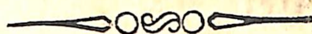
सबने पण्डित ऋषिरामजीकी प्रशंसा कर घर चलनेका विचार किया, मार्गमें श्रीमान् पण्डित नारायणदास आचारीने कहा कि मित्र! नाटकविद्यामें आपकी अधिक रुचि है, सो जग-दुपकारार्थ अभिमन्युनाटक निर्माण करना चाहिये, उस समय जो कविमण्डली के मित्रवर साथ थे सबने प्रसन्न होकर कहा कि धन्य है पण्डितजी ! यह तो आपने अच्छा विचार विचारा और मुझसेभी कहनेलगे कि, भाई ! नाटक अवश्य रचना

चाहिये, कहनेको तो हमभी थे परन्तु पण्डित महाराजनेही कहदिया, जो अभिमन्युवध नाटक आप अपनी लेखनीसे लिखोगे तो अद्वितीय होगा । मैंने सब मित्रोंका कहना अपने शिरपर धारण किया और उसी दिनसे अभिमन्यु नाटक निर्माण करना आरम्भ किया, और नवों रस ऐसे दरशाये मानो रसही आप अपना अपना रूप धरकर नाटक रचनेके लिये आये हैं और बाँहैं उसका ये खडे हैं, इस नाटकको देखकर कैसाही पाषाणहृदय क्यों न हो एकवार तो आंसुओंकी धारा बहने ही लगेगी; परन्तु दैवयोगसे कुछ ऐसा कारण हुआ कि, यह नाटक पूरा होनेमें न आया, अधवना पडारहा. कई वर्षतक उसकी समाप्ति न हुई जब श्रीयुत वैश्यवंशावतंस गुणिजनसुखदायक, सर्वयोग्य गोब्राह्मणहितकारी, सत्यव्रतधारी, सर्वविद्या भण्डार, परमोदार सेठ-खेमराज श्रीकृष्णदासजीने शुकसागर, शालिग्रामनिघण्टु भूषण आदि मेरे कई ग्रन्थ छापे तो मैंने इस नाटककी पूर्ति करके उनहींको समर्पण किया. उनको कोटिशः धन्यवाद है कि, जिन्होंने अपना धन व्यय करके मेरे इस अभिमन्युनाटक को अपने " श्रीवेंकटेश्वर " यंत्रालयमें मुद्रित करके जगत् में प्रसिद्ध किया और फिर अपने ज्येष्ठ भाईके लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेसमें मुद्रित किया ।

आपका दर्शनाभिलाषी-शालिग्राम वैश्य.
मुहल्ला दीनदारपुरा मुरादाबाद सिटी.

॥ श्रीः ॥

नाटकके पात्रोंके नाम ।



नान्दी.........मंगलपाठक

सूत्रधार......नान्दीके पीछे आनेवाला

नट.........नाटक रचनेवाला

नटी.........नटकी स्त्री

अभिमन्यु......नाटकका नायक

कर्ण.........महारथी

दुःशासन......महारथी

द्रौषण.........दुःशासनका पुत्र महारथी

धृतराष्ट्र.........महारथी

विदुर............धृतराष्ट्रका मन्त्री

कृपाचार्य.........कौरवोंके गुरु

भूरिश्रवा.........महारथी

दुर्योधन.............धृतराष्ट्रका पुत्र

संजय............एक रणधीर योद्धा

युधिष्ठिर
भीमसेन
अर्जुन
नकुल
सहदेव
} पांचों पांडव

सारथि...............अभिमन्युका सारथि

श्रीकृष्ण......त्रिभुवनपति
दारुक...........श्रीकृष्णका सारथि
शकुनि...........एक बलवान् वीर
सैनिक...........अनुचर
दूसरा.........सैनिक—अनुचर
योगमाया...देवी
राक्षसी.......मरघटकी
ऋषि.......
दूसरा......ऋषि
महादेव.........भूतेश्वर
नन्दीगन..........
ब्रह्मचारि..........
सात्यकि......एक बलवान् वीर

नाटकके पात्रोंकी स्त्रियोंके नाम ।

सुभद्रा......अर्जुनकी स्त्री अभिमन्युकी माता।
द्रौपदी......पांडवोंकी स्त्री
उत्तरा.......अभिमन्युकी स्त्री
चित्रावती....उत्तराकी सखी
सुनन्दा........उत्तराकी सखी
दासी...........सुभद्राकी दासी

इति नाटकके पात्रोंके नाम ।

प्रस्तावना ।

नेपथ्यमें शंखका शब्द सुनाई आरहा है, कभी कभी बीच बीचमें गम्भीर स्वरसे रणसिंहेका घोर नाद होने लगता है, बाँसुरीके स्वरोंसे मिले हुए गायक लोग वियोगके रसीले रसीले पद गा रहे हैं और वीणा मृदंगादि अनेक प्रकारके यंत्र बज रहे हैं

वहांसे नान्दी, शरीरमें भस्म रमाये, जटा बढाये, मस्तकपर चन्दन और केशरका तिलक लगाये, हाथमें रुद्राक्षकी माला लिये कुछ कुछ भंगसी पिये, जोगिया बेश किये मंगलाचरणके निमित्त इष्टदेवको मनाता, तँबूरा बजाता और स्वरसहित इस श्लोकको गाता चला आता है ॥ श्लोक ॥

कस्त्वं शूली मृगय भिषजं नीलकण्ठः प्रियेऽहं
केकामेकां कुरु पशुपतिर्नैव दृष्टे विषाणे ॥
स्थाणुर्मुग्धे न वदति तरुर्जीवितेशः शिवाया
गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातु वश्चन्द्रचूडः॥ १ ॥

अर्थ—एक समय शिवजी पार्वतीके निकट गये, पार्वती बोलीं तुम कौन हो ? शिवने कहा मैं शूली हूँ, देवी बोलीं तो औषधी ढूँढो, शिवने कहा प्रिये ! मैं नीलकण्ठ हूँ, पार्वती बोली तो महाराज ! एक मधुर शब्द सुनाओ, शिवने कहा मैं पशुपति हू, पार्वतीने कहा आपके सींग तो हैंही नहीं, शिव० अरी ! मैं स्थाणु हूँ, पार्वती० वृक्ष तो बोलते नहीं. शि० मैं शिवाका जीवन प्राण हूँ पा० तो वनमें जाकर शब्द करो, इस प्रकार पार्वतीवचनसे निरुत्तर हुए शिव तुम्हारी रक्षा करैं ॥ १ ॥

स्तुति श्रीकृष्णकी ।

जय जय जय जय मुकुन्द, नन्दके दुलारे ।
शीश मुकुट तिलकभाल, काननकुण्डल विशाल,
कण्ठ माहिं गुञ्जमाल, मुरली कर धारे ॥ १ ॥
ग्वालबाल लिये संग, रचत सदा रासरंग,
बजत बाँसुरी मुरचंग, यमुनके किनारे ॥ २ ॥
काहूको फोरत घट, काहूकी पकरत लट,
काहूको घूँघट झट, खोलत ढिग आ रे ॥ ३ ॥
धन धन धन श्रीमुकुन्द, काटहु दुख हरहु द्वन्द,
श्रीगोविन्द श्रीगोविन्द, श्रीगोविन्द प्यारे ॥ ४ ॥
कृपासिन्धु विश्वनाथ, मांगत वर जोर हाथ,
बसहु सदा रमा साथ; हृदयमें हमारे ॥ ५ ॥

सूत्रधार-(सब ओरको देखकर) बारम्बार धन्य है उस जगदाधारा सृजनहार करतारको, जिसने संसारमें अनेक प्रकारके पुष्पोद्यान निर्माण किये हैं; जिसमें भाँति भाँतिके फूल फूल रहे हैं, उन अनोखे अनोखे पुष्पोंकी सुगन्ध सनीत्रिविध बयारके सञ्चारसे सब संसार सुगन्धित हो रहा है, (आगे बढकर) अहा, हाहा ! आज तो यह दरबार श्रीमान् राजा कृष्णकुमार सी० आई० ई० का है इस स्थानपर बडे बडे राजा महाराजा, ज्ञानी, विज्ञानी, सज्जन, विद्वज्जन, कुलीन, प्रवीण, गुणी, गुणज्ञ एकत्रित हैं मेरे चित्तमें अभिलाषाहै कि,इन प्रेमी रसिकजनोंको

कोई उत्तम नाटक दिखाना चाहिये, जिसमें नवों रस झलकते हों, देखो ! काममें त्रुटि न रहे यह नामी दरबार है यहां पूरा पारितोषिक मिलेगा.

नट-भाई ! वीररसको देखना और दिखाना महाकठिन है. कठिन वाक्य सुनतेही शरीरमें चिनगारीसी निकलने लगती है चित्तमें साहस और उत्साह बढजाता है, जब वीरके शरीरमें वीरता और तेज बढता है तब सिवाय मार मारके और कुछ नहीं सूझता, वीरताका नाटक तो करूं परन्तु किसीके शरीरमें वीरत्व न झलक उठे !

सूत्रधार-वीरता तो संसारमें सारही है, फिर इसमें हानि क्या ?

नट-यह बात तो आपकी सत्य है; परन्तु जब वीरके शरीरमें वीरत्व झलकने लगता है फिर मार मारके सिवाय और कारबार नहीं रहता.

सूत्रधार-होता तो ऐसाही है, परन्तु स्वर्गलोकमें देवताओंकी कन्या उनके मरणसे वर्षों पहिले उनके वरनेकी आशा करती रहती हैं और जबतक संसारमें रहते हैं शतशः पुरुष उनकी प्रशंसा करते हैं, इससे अधिक और क्या ?

नट-तो भाई ! तुमको ऐसा कोई वीरताका नाटक दिखावेंगे जो सहस्रों वीरोंके शरीरोंके ढेरके ढेर पडे हों.

सूत्रधार—ऐसा कौनसा नाटक है ?

नट—भाई ! नाम तो पीछे बताऊंगा पहिले अपनी नटिनीसे सम्मति करलूं ।

सूत्रधार—अच्छा भाई ! तो जाओ पहिले अपनी नटिनीसे बूझ आओ. (गया)

नट—(नेपथ्यकी ओर धीरेसे पुकारता है) चन्द्रकला ! चन्द्रकला !! हे प्रिये चन्द्रकला !!! बोलती नहीं, क्या सोगई ?

नटी—प्राणाधार ! क्यों क्या कोई अवश्य कार्य है ?

नट—कार्य तो अवश्य हैही, परन्तु यह तो बताओ इस समय तुम क्या कर रही थी ?

नटी—स्वामी ! मैं क्या बताऊँ कुछ कहने योग्य हो तो कहूँ.

नट—प्यारी ! कुछ संशयोंकी बात तो नहीं ?

नटी—प्राणवल्लभ ! संशय हो आपके शत्रुओंको. मैं आपके चरणसरोरुह देखकर कमलिनीकी सदृश सदा आनन्दित रहूँ हूँ स्वामी ! सत्य तो यह है कि मैं इस समय एक महाअद्भुत नाटक पढ रही थी ।

नट—प्यारी ! फिर तेरा शरीर क्यों कांपता है ? मुखसे वचन पूरा क्यों नहीं निकलता ? हृदय क्यों धकधक करताहै ? ऐसा कैसा अद्भुत नाटक था ?

नटी—प्राणनाथ! अभिमन्युवध उसका नाम है और लाला शालिग्राम वैश्य मुरादाबादनिवासीका निर्माण किया हुआ है, उसमें करुणारस और वीररस ऐसा झलकाया है मानो साक्षात् दर्श रहा है, अक्षर अक्षरसे करुणारस टपक रहा है; मैं इसके ध्यानमें ऐसी मतवाली होगई कि, तन मनकी कुछ सुधि बुधि न रही; तुम्हारा—

नट—प्यारी! वह नाटक तो मैंने भी पढा है, जैसा तू बताती है वास्तवमें वैसाही है, परन्तु यह तो कहो होठोंही होठोंमें तुम मधुर स्वरसे क्या गा रही हो?

नटी—स्वामी! क्या कहूँ? यह नाटक वियोगान्त है. अंग्रेजीमें जिसको (ट्रेजूडी) कहते हैं जिसको पढकर पत्थरका हृदय भी नैकर मोम हो जाता है, सुभद्रा और उत्तराकी करुणा पढकर प्राणीकी सुधि बुधि ठिकाने नहीं रहती अंग अंगमें आगसी लग जाती है, शरीर व्याकुल हो जाता है, उनकी दशा स्मरण करके मेरी आंखोंसे आंसू नहीं थमते.

नट—प्रिये! मैंने कईबार पूँछा कि, बार बार तुम गाती क्या थी? इस बातका उत्तर तुमने मुझे कुछ नहीं दिया.

नटी—प्राणेश्वर! उसी नाटकमें यह पद था "बिना पति सूना सब संसार" जबसे यह पद पढा है मेरे चित्तसे क्षणभरको नहीं बिसरता। इसीलिये मैं बारम्बार इस पदको गाती हूँ और उत्तराकी विपत्तिको देख बारबार पार्वतीको मनाती हूँ कि हे माता! मेरा पति तेरे हाथ है.

नट–धन्य है धन्य मदनमोहनी !

दोहा–पति राखे पति होत है, पति खोये पति जाय ।
पतिही पतिकी मूल है, पति विन पति न रहाय ॥

नटी–स्वामी ! बातोंही बातोंमें बहुत विलम्ब होगया आपने अपना मनोरथ कुछ प्रगट न किया ।

नट–प्यारी ! मैं इसलिये आया था कि, आज राजा कृष्ण कुमार सी० आई० ई०के यहां बडी भारी सभा है, उसमें गुणी पुरुषोंको एक नाटक दिखानेकी मेरीभी इच्छा है परन्तु मेरा विचार यह है कि, अभिमन्युनाटक रचा जाय तो अच्छा है, मैंने भी आजही आद्योपान्त पढा है और तुमभी पढही रही थी इस बातकी सम्मति करने तुमसे आया हूँ.

नटी–जीवनआधार ! मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन तो नहीं करसक्ती, परन्तु मुझको उत्तरा बननेकी सामर्थ्य नहीं क्योंकि, पढनेसे तो यह दशा है और साक्षात् रूप बनानेसे न जानिये क्या हो ? मैंने उत्तराकी जो गति देखी वह प्रत्यक्ष मेरे नेत्रोंके सन्मुख दिखाई दे रही है, हाय ! वह पतिका वियोग मेरे सहने योग्य है ? प्यारे ! वह तो आकाशवाणी सुनके बचभी गई, परन्तु मैं उसी समय मर जाऊँगी.

नट–प्यारी ! बडी लज्जाकी बात है, मैं भरी सभामें सूत्रधारके सामने कह आयाहूँ कि, आज नाटक खेलूँगा, वहां अनेक देश देशान्तरोंके गुणी पुरुष आये हैं और लाला शालि-

आप नाटकके रचयिता भी वहां ही बैठे हैं, उनको भी अपना कर्तव्य दिखाना है.

नटी—अच्छा प्राणनाथ ! आज इसी नाटकका आरम्भ करो, जो होगी देखी जायगी, क्योंकि, लाला शालिग्रामके देखनेकी मुझको अत्यन्त आकांक्षा है; बहुत दिनोंसे नामही सुना करती थी, परमेश्वरने आज समागमभी बना दिया, नाटकहीके प्रतापसे उनका दर्शन हो जायगा चलो, मैं उत्तराका वेश धारण करके आती हूँ.

नट—अच्छा प्यारी मैंभी अपने पिताको तो धृतराष्ट्र, एक भाईको धर्मराज युधिष्ठिर, एक भाईको दुर्योधन, एकको भीम, एकको अर्जुन और बालबच्चोंको सात्यकी धृष्टद्युम्न आदि बनाता हूँ । सूत्रधार ! सावधान हो, मैं अपनी नटिनीसे बूझ आया आज अभिमन्यु नाटक होगा ।

सूत्रधार—वाह ! भाई ! वाह ! यह तो नयाही नाटक गढके लाये ।

नट—आपके चरणारविंदकी कृपासे नित नयेही नये नाटक रचे जांयगे.

सूत्रधार—(इधर उधरको देखकर) क्या चौमासा आगया ?

नट—भाई ! क्या स्वप्न देख रहे हो ?

सूत्रधार—स्वप्न नहीं,प्रत्यक्ष पुष्पोद्यानकी ओरसे मोरकासा शोर कोकिलाकीसी हूक, पपीहेकीसी पी पी, दादुरकासा शब्द,

झींगुरकीसी झींगार बराबर सुनाई आती है और कभी कभी बीचमें बिजलीसी भी चमक जाती है, फिर कैसा स्वप्न ?

नट–भाई तुमने धोखा खाया; न मोर हैं, न पपीहे हैं, न कोकिला है, जिसको आपने कोकिला समझा, वह कोकिलकण्ठी मेरी प्राणप्यारी है, उत्तराका वेश धारण किये सखियोंको संग लिये, बांसुरी, मंजीरे, मृदंग, सारंगी, वीणा बजाती; रसीले रसीले राग गाती हुई आती है, उसके कर्णफूल जो चमक जाते हैं उन्हींको तुम बिजली कहते हो.

नटी--प्यारे ! मैं तो आगई आप अबतक बातेंही कररहे हैं,

सूत्रधार–भाई ! शीघ्र नेपथ्यमें चलकर ताल तंबूरा जोडो.

(सब गये)

इति प्रस्तावना ।



॥ श्रीः ॥

अथ अभिमन्युनाटक।

प्रथम अंक।

प्रथम दृश्य।

(स्थान मंत्रणागृह.)

(दुर्योधन, द्रोणाचार्य, कर्ण और शकुनी मंत्रणागृहमें बैठे विचार कर रहे हैं)

दुर्योधन—विधाताके यहां सुविचार नहीं वह जिसका बुरा करनेको तत्पर होता है, उसका विनाशही कर देता है, आज कुरुकुलसे विधाता अत्यन्त विमुख है, अब कुरुवंशियोंका मगल नहीं, ऐसा जान पडता है कि पाण्डवोंहीके हाथसे सम्पूर्ण कुरुकुलका संहार होगा.

द्रोणाचार्य—हे वत्स ! निराश मत हो, पाण्डवोंसे विधाता अतिसंतुष्ट है यह बात आपकी सत्य है और उनको युद्धमें परास्त करना महाकठिन है यह बातभी सत्य है, परन्तु तो भी परिणाम देखे विना शोचसागरमें डूब जाना पुरुषार्थियोंको उचित नहीं; बेटा ! दोर्दण्ड प्रतापी, महातेजस्वी, अत्यन्त बलवान्, निशिचरपति रावण जिस समय जटा वल्कलको धारण किये, अवधविहारी श्रीरामचन्द्रके हाथसे अपने वंशसहित मारा गया था, उस समय—

कर्ण–यदि उस समय उपाय किया जाता तो पाण्डवगण युद्धविशारद महाबलशाली कौरवोंसे अवश्यही हार जाते,क्योंकि पाण्डव केवल पाँचही पुरुष थे, और कौरवोंके पक्षमें सहस्रों योद्धा रणमण्डित थे. सखे ! निराश मत हो, मन दृढ करो, युद्धके पन्थमें कोमल फूल नहीं बिछे हैं,किन्तु अनेक आत्मीय स्वजन बन्धु बान्धवोंके मृत देहोंपर पग धारण करना पडेगा ।

दुर्योधन–अपार महासागरमें बहा जाता हो, और जिसको एक तृणका भी आश्रय न मिले, उसकी सब आशा निष्फल है, उत्तालतरलतरंगमालासंकुल गंभीर सागरके मध्यमें चिरसैन्य भिन्न होजाय फिर वह और क्या आशा करे ! उसके डूबनेमें कुछ संशय नहीं, मैं भले प्रकार जानताहूँ कि जबतक कुरुकुल निर्मूल न होगा तबतक यह समरानल कदापि न बुझैगी.

द्रोणाचार्य–पुत्र ! ऐसा मत कहो, देखो मेरे सहायक होनेपर ऐसी बात आपको कहनी उचित नहीं.

दुर्योधन–गुरुदेव ! पाण्डव आपके शिष्य और आप उनके गुरु हैं; इसी कारण वह प्रत्येक युद्धमें जयी होते हैं, तब आपकी उपेक्षाके अतिरिक्त अर्थात् लापरवाहीके सिवाय और क्या कहा जाय

कर्ण–मित्र ! सत्य है पाण्डव द्रोणाचार्यके परमप्रिय शिष्य हैं, इसलिये यह उनपर दया प्रदान करते हैं, यह मैंने पहिले ही कहा था कि, और किसी दूसरेको सेनापति नियत करो, तब

तुमने एक न सुनी, आचार्यही आचार्यके धोखेमें अज्ञानी होगये अब आचार्यका स्नेह देखो.

द्रोणाचार्य–नीचमुखसे ऊँची वाणी शोभा नहीं पाती, दुर्योधन! तुम किसी भ्रमजालमें पडेहो, क्या तुम पाण्डवोंको नहीं जानते?–स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जिनके सहायक, फिर उनके सहायक शब्दवेधी क्यों न हों? और संग्राममें विजय क्यों न पावैं? फिर उनके तेजकी प्रचण्ड ज्वालाका प्रकाश मार्तण्डके समान दशों दिशामें क्यों न फैलै? जब वह ऐसे बलवीर और रणधीर हों फिर मैं एक तुच्छ मनुष्य उनका क्या करसक्ता हूँ?

कर्ण–बालकोंके समझानेके लिये यह युक्ति अच्छी है.

द्रोणाचार्य–नराधम! मौन धारण कर, क्यों मेरे हृदयको जलाता है?

दुर्योधन–आचार्य! मेरा सखा जान इसका अपराध क्षमा करो.

द्रोणाचार्य–इसीलिये यह दुष्ट अबतक बचा–दुर्योधन! जैसे तुम्हारा मन संतुष्ट हो वह कहो मैं सब प्रकार प्रस्तुत हूँ।

दुयाधन–आप क्या नहीं जानते? हमारी ओरके सहस्रों वीर मारेगये और पाण्डवोंके पक्षमें एक सेनाध्यक्षभी नहीं मारा गया यह क्या सामान्य दुःखका विषय है?

द्रोणाचार्य-अच्छा मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज कोई पाण्डवपक्षीय वीर अवश्य मारा जायगा इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह न समझना, अब मैं एक ऐसा व्यूह निर्माण करता हूँ जिसे अर्जुनके सिवाय और कोई भेदन करना नहीं जानता.

कर्ण-मैं आज खड्ग छूकर कहताहूँ कि पाण्डवकुलचूडामणि अर्जुनका अपने हाथसे संहार करूंगा, जिसकी आचार्यलोग इतनी प्रतिष्ठा करते हैं, अब ज्ञात होगा वह कैसा वीर है या तो मेरेही उसके हाथसे मृत्यु होगी नहीं तो मैं उसे यमाराजके भयानक भवनको अवश्य भेजूंगा.

शकुनि-संसारमें प्रतिज्ञाही सार है, सब विषय सम्भव असंभव हैं, परन्तु तुम्हारी बातके शेषभागका प्रथमांशही सत्य होता दीखै है, अर्थात् अर्जुनके हाथसे तुम्हारी ही मृत्यु होती दिखाई देती है.

कर्ण-निःसन्देह क्या वीर पुरुष मृत्युसे भय करते हैं ?

शकुनि-यह रणमें सब देखा जायगा, अब वृथा बकवादसे क्या प्रयोजन ?

दुर्योधन-आचार्य्य ! आपकी प्रतिज्ञा करनेसे मेरा मन संतुष्ट नहीं हुआ, मुझे निश्चय प्रतीत होता है कि, मामाके वाक्यका प्रथमांश सत्य होगा ।

द्रोणाचार्य-क्या मुझे ऐसाही जानतेहो कि, मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन नहीं करसक्ता ? यदि ऐसा हो तो जो प्रतिज्ञा पालन करसके उसेही सेनापति बनाओ, मैं यहांसे जाताहूँ.

शकुनि-दुर्योधन ! तुम क्यों इतना सन्देह करते हो ? पाण्डव मनुष्य हैं, कुछ अमर और देवता तो हैंही नहीं, और विशेष करके जब द्रोणाचार्यजी प्रतिज्ञा करते हैं तो तुम्हारा सन्देह करना वृथा है.

दुर्योधन-मामा ! आचार्यकी प्रतिज्ञामें कुछ सन्देह नहीं, और पाण्डव अमर अजर भी नहीं हैं यह तो मुझको पूर्ण विश्वास है, परंतु तोभी कौरवोंके हाथसे उनकी मृत्यु नहीं, भवितव्यता मेरे सन्मुख अपना तमोमय मुख दिखा रही है; उसके भीतर कौरवोंके विनाशके लक्षणसे भिन्न और कुछ दृष्टि गोचर नहीं होता.

द्रोणाचार्य-दुर्योधन ! क्या तुमने वीरता; साहस, उद्यम उत्साहादिकका एकबारही त्यागन करादिया ? वीरहृदय साधारण कारणसे क्यों विह्वल होगया ? तुम क्षत्रियसन्तान द्रोणाचार्यके प्रिय शिष्य, तुम्हारे अधीन सहस्रों राजपुत्र, एकादश अक्षौहिणी सेना, कर्ण, कृप, शल्य, भूरिश्रवा, जयद्रथ अश्वत्थामा और कहांतक वीरोंके नाम गिनाऊँ सबही तुम्हारे सहायक और पक्षपाती हैं फिर तुम्हारा निराश होना आश्चर्य है.

दुर्योधन-गुरुदेव ! सब सत्य है सहस्रों युद्धविशारद, रणमण्डित, पराक्रमी वीरपुरुष हमारे पक्षमें हैं, शस्त्रविशारद द्रोणाचार्य जिनकी अनिवारित शरधारोंके सन्मुख पृथ्वीमें कोई वीर अग्रसर नहीं होसका वहभी हमारी ओर, परन्तु न जानिये

फिर क्यों हम बारंबार अपमानित होते हैं, यह सब आपहीका कार्य है हम तो सब आपके दासानुदास हैं, श्रेष्ठ श्रेष्ठ सब शस्त्र पहिलेही अपने शिष्य अर्जुनको देदिये, अब यदि वह जयलाभ करै तो आश्चर्यही क्या है? इस समय अर्जुनके बाणोंसे हम निहत हों, और आप अपनी आंखोंसे देखें, हाय !

द्रोणाचार्य–दुर्योधन ! ऐसी बातोंसे मन दुःखित होता है अर्जुनने अनेक देश देशान्तरोंमें परिभ्रमण करके उत्कृष्टोत्कृष्ट अस्त्र संग्रह किये,मुझसे उसने इतने अस्त्र नहीं पाये अब वह उन अस्त्रोंके प्रभावसे किसी कार्यको असाध्य नहीं समझता; और जहां जाता है वहां विजय पाता है, यदि वह इच्छा करै तो सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षणमात्रमें बाणोंसे खण्ड खण्ड कर डाले ।

दुर्योधन–गुरुदेव ! अब क्या आज्ञा हैं कहिये, अबतक तो पांडवोंकी ओरके वीरवृन्द जिस साहस और उत्साहसे युद्ध करते हैं उसको देखकर भय लगता है, हमारी सेना नित्यही मृत्युपन्थकी पथिक हो रही है ।

द्रोणाचार्य–आज मैं वह व्यूह रचना करूंगा जिससे अवश्यही उनका गर्व खर्व हो, हमारी ओरके प्रधान प्रधान वीरगण व्यूहरक्षक होंगे और अर्जुनके अनुपस्थितकालमें पाण्डवगण उस व्यूहको नहीं भेदन करसकैंगे, तुम निश्चिन्त रहो, आज मैंने सत्य प्रतिज्ञा कर ली है, तुम निश्चय जानलो कि, पांडवोंकी ओरका कोई न कोई वीरपुरुष मृत्युक्रोडमें शयन करैगा.

कर्ण–न्याययुद्धमें यह कार्य होना बहुत कठिन है.

दुर्योधन–इसमें न्याय अन्याय क्या ? शत्रुको जिस रीतिसे बने उस रीतिसे मारना चाहिये, गुरुदेव ! आप जिसके मारनेकी इच्छा करें देवता भी रक्षा नहीं करसक्के, आचार्य ! अर्जुनको पराजय करना महाकठिन है; यह मैंभी मानताहूँ परन्तु आप तो युधिष्ठिरको भी सन्मुख देखकर छोड देते हैं.

द्रोणाचार्य–युधिष्ठिर सामान्य मनुष्य नहीं है क्या युधिष्ठिरको पराजय करना सहज है ? देव, दानव, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व कोई उसको पराजय नहीं करसक्के क्योंकि, स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र महाराज वैकुण्ठनाथ जिनके मंत्री, समरविजयी गाण्डीवधनुषधारी नरनारायणरूप पार्थ जिनका सेनापति, उसको स्वयं शूलपाणि भगवान् भवानीपति महादेवभी पराजय नहीं करसक्के.

कर्ण–यह कृष्ण सब अनर्थोंका मूल है, इसीके कुटिलचक्रसे पाण्डव बलशाली हो रहे हैं.

दुर्योधन–फिर क्यों वृथा निष्फल आशा और साहस दिखातेहो.

शकुनि–दुर्योधन ! आचार्यकी प्रतिज्ञाको मत भूलो, वह अवश्यही किसी पाण्डवपक्षके महारथीको यमालय प्रेरण करेंगे।

कर्ण–प्रतिज्ञा स्मरण है, परन्तु वासुदेवरक्षित पाण्डवोंके किसी सेनापतिको भी धर्मयुद्धमें विनाश करना सहज नहीं है.

द्रोणाचार्य-तुम्हारी इच्छा मुझसे अन्याययुद्ध करानेकी है सो होसक्ती है कदापि नहीं, तुम्हारा जन्म जैसे नीचकुलमें है वैसेहे तुम्हारी सम्मतिभी शठताईसे भरी हुई है, जो ऐसे कूटयुद्धकी मंत्रणा करे अथवा उसमें प्रवृत्त हो वह वीर नहीं, किन्तु वीरकलंक है.

दुर्योधन-गुरुदेव ! क्रोध संवरण करो, सखाकी सम्मति अनुचित नहीं है; यदि मेरी रक्षा करनी चाहतेहो तो सखाहीके मतसे कार्य करो, शत्रुके वध करनेमें अन्याय करना कोई पाप नहीं है, यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो अन्याययुद्ध करनाही पडेगा.

द्रोणाचार्य-दुर्योधन ! तुम मुझे अन्याय अनुरोध मत कराओ और जो कहो सो करसक्ताहूं परन्तु क्षत्रियोंका गुरु कहाकर अन्याययुद्धका परामर्ष नहीं देसक्ता.

दुर्योधन-तो मैं आपही अपना प्राणघात करूंगा (खड्ग लेता है)

द्रोणाचार्य-(हाथ पकडकर) दुर्योधन ! यह क्या ? खड्ग अलग कर.

दुर्योधन-जबतक आप मुझपर अनुग्रह न करेंगे, खड्ग कभी न छोडूंगा, या तो मेरे वैरियोंका वध कीजिये नहीं तो अपने नेत्रोंसे मेरा मरण देखिये.

द्रोणाचार्य–दुर्योधन ! तुम्हारे कारण क्या मुझे महागम्भीर पापसागरमें निमग्न होना पडेगा ?

दुर्योधन–गुरुदेव ! शत्रुके मारनेसे कुछ पाप नहीं वरन् आश्रितको निराश्रित करना महादोष है।

द्रोणाचार्य–अच्छा तुम सावधान तो हो युद्धकालमें जो आवश्यक होगा वह करेंगे।

दुर्योधन–गुरुदेव ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपनी प्रतिज्ञा पालन करेंगे।

द्रोणाचार्य–इसमें कुछ सन्देह नहीं, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ आज शत्रुसेनाका कोई न कोई वीर मेरे हाथसे मारा जायगा।

दुर्योधन–आपका अनुग्रह ही हमारा जीवनमूल है।

द्रोणाचार्य–अब सब दुर्गमें चलो (खडे होकर) आयेहुए राजा और राजकुमारगण रणस्थलमें भेजेजायँ और हमारी ओरके छः वीर रणविशारद रथीभी वहां अवस्थान करैं और तुमको भी समरभूमिमें रहना उचित है. मैं अभी चक्रव्यूह निर्माण करनेका उद्योग करताहूं. चलो सब चलो।

कर्ण–चलो ! महाराज दुर्योधनके निमित्त इस शरीर और प्राणको लगावें।

शकुनि–महाराज दुर्योधनकी जय हो जय हो (ऐसे कहते हुए सब जाते हैं और जवनिका पतित होती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक प्रथमगर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

अथ द्वितीय गर्भांक ।

स्थान युद्धस्थल ।

(द्रोणाचार्य, दुर्योधन और जयद्रथ विचार कर रहे हैं)

द्रोणाचार्य-समागत नृपतिगणोंको व्यूहके चतुष्पार्श्वमें रहना चाहिये, राजपुत्र द्वारदेशमें अवस्थान करेंगे और हे दुर्योधन ! तुम महावीर कर्ण कृपाचार्य और दुःशासन मेरी सेनाके मख रक्षक रहो, और तुम्हारे भ्राता जयद्रथके पार्श्वमें नियम किये जायँ, और हे जयद्रथ ! तुम सुखमें विराजमान रहो; मैं आर द्वारोंकी ओर देखआऊं ।

दुर्योधन-जो आज्ञा ? (दोनों गये)

जयद्रथ-द्रौपदीहरणके समय भीमसेनसे जो अपमान हुआ था आज मैं सम्यक्प्रकार उसका बदला लूँगा हे भगवन् शूल पाणि ! आपकी कृपासे धनञ्जयके सिवाय और सबको परास्त कर सक्ताहूँ सो रणमें अर्जुन हैही नहीं, और दूसरा मेरे सम्मुख कोई जय पा नहीं सक्ता भीमसेन ! यदि आज तुझे रणस्थलमें पाऊं तो अपनी मनोवांछा पूरी करूं; तेरे शरीरमें अस्त्रघात कर गदासे तेरा मस्तक छेदन कर पदाघातसे तेरा चूर्ण करदूँ । (नेपथ्यमें शब्द होता है) राजपुत्रगण ! तुम उच्चस्वरसे दुर्यो-धन महाराजकी जय बोलो, कुरुपति महाराजकी जय बोलो ।

(नेपथ्यसे शब्द होता है) कुरुपति महाराजकी जय हो !

(नेपथ्यमें दूसरी ओरसे) धर्मराज युधिष्ठिरकी जय हो !

(भीमसेनका प्रवेश)

भीमसेन-(आपही आप) कौरवोंके जय बोलनेका क्या कारण ? बारम्बार यह हमसे पराजित होते हैं तथापि यह सिंहनाद क्यों ? अहाहाहा ! मुझको ऐसा जान पडता है कि, उनको उन्माद होगया अथवा निर्वाणोन्मुख दीपककी नाईं इस जन्ममें हँस रहे हैं (प्रगट) आज कौन नराधम पराजित, अपमानित दुराचारी दुर्योधनकी जय बोलता है ? मेरे जीवित रहते जो पापी दुर्योधनकी जय बोलता है उसको मेरे गदाघातसे समरशायी होना पडता है. हे दुराचारी ! आगे आ.

जयद्रथ-अरे ! क्या मूर्ख भीमसने है ? क्या कहा ? मैं महाराज दुर्योधनकी जय बोलताहूं, और तेरे सन्मुख फिर कहताहूं. जय हो ! जय हो !! महाराज दुर्योधनकी जय हो ! ! !

भीमसेन- जयद्रथ ! पृथ्वीमें तेरे समान निर्लज्ज और अन्यायी कोई नहीं. साध्वी सती द्रौपदीके हरणकालकी अपमानता क्या तू भूल गया ? मैंने अपने मनमें समझा था कि, उस लज्जासे सुजनसमाजमें तू मुख न दिखावेगा, अरे निर्लज्ज महापापी ! अब क्या मुँह लेकर मेरे सन्मुख आया ? तेरा यह शिर मुण्डन किया था क्या उस समयको तू भूल गया ? हाँ ! भूलजाना सम्भव है, क्योंकि तेरा मस्तक फिर केशवत् होगया, अरे नराधम ! तू सब बातें एकबारही भूल गया फिर निर्लज्ज बन काला मुहँ लिये दुर्योधनकी जय बोलने आया-

अरे नीच पामर पाखण्डी ! तेरा प्रभु दुर्योधनभी तेरेही समान नीच है, जो अभागी पहिलेहीसे पराजित होता चला आया है वह तेरी नाईं निर्लज्ज मनुष्यकी जयनादसे प्रसन्न होगा इसमें विचित्रता क्या है ?

जयद्रथ–सब स्मरण है अब उसका प्रतिशोधन किया जायगा. अरे अधम भीम ! अब वृथा बकवादसे क्या प्रयोजन ? आओ दोनों रणस्थलमें युद्ध करें ।

भीमसेन–अरे जयद्रथ ! दुराचारी ! तू महानीच है तेरे साथ युद्ध करना मुझको शोभा नहीं देता. तुच्छ कीटसे मतंगका युद्ध क्या ?

जयद्रथ–मनमें डर मुखपर साहस (अरे) भीरु ! मैं जानता हूँ तूं युद्ध करना नहीं जानता, सदैव अर्जुनकीही दुहाई देता फिरा है, तू युद्ध करना क्या जाने ? आज अर्जुनके विना अस्त्र धारण करे तो मैं जानूँ कि, तू वीर है, और यदि अधीर हुआ है तो मुझसे अभयप्रार्थना कर. मैं तुझे जीवदान दूं और न मारूं. न तेरे शरीरमें अस्त्रघात करूं. केवल पहिले अपमानका बदला लेनेको तेरा शिर तो अवश्यही मुण्डन किया जायगा ।

भीमसेन–अरे नीच ! तेरा अन्तःकरण अत्यन्त नीच है, यह तेरे कटुवचन मुझसे नहीं सहेजाते. यदि इस मेरे गदाप्रहारसे तू बचगया तो समझेगा (गदाप्रहार).

(युद्ध करते दोनों गये)

(कुछ कालोपरान्त जयद्रथका प्रवेश)

जयद्रथ--(अत्यन्त हर्षसे) भगवान् महादेव भूतनाथ भूतेश्वरकी कृपासे आज पाण्डवोंको भाँति भाँतिसे परास्त करूंगा, आज मैं अर्जुनके सिवाय किसीसे भय नहीं करता, दुरात्मा भीम भाग न जाता तो निःसन्देह आज उसका प्राणसंहार करता ।

(युधिष्ठिरका प्रवेश)

युधिष्ठिर—नित्यप्रति आत्मीय स्वजन ज्ञाति भाई बन्धुओंका शोणित नहीं देखा जाता; हा! राजलिप्सा क्या भयानक है ? इस युद्धके शीघ्र अवसान होनेहीसे मंगल है ।

जयद्रथ—धर्मराज ! आइये क्या आज्ञा है ? भीमसेनसे युद्धका वृत्तान्त तो सुनहीं लिया होगा, फिर आपने क्यों परिश्रम किया ?

युधिष्ठिर—तुम्हारी अस्त्रशिक्षाकी परीक्षा लेने आया हूं, यद्यपि भीमसेन तुमसे हारगया परन्तु युधिष्ठिर तो अभी जीते हैं, एक भीमसेनके परास्त करनेसे सब पाण्डवोंपर जयलाभ नहीं करसक्ते. बन्धु बान्धवोंके शरीरमें अस्त्रघात करनेसे युधिष्ठिर सर्वदाही कुण्ठित है परन्तु उनकी इच्छासे उस कार्यमें प्रवृत्त होना नहीं पडा, जयद्रथ ! सावधान होकर आओ युद्धमें प्रस्तुत हो ।

जयद्रथ–रणस्थलमें क्षत्रियको युद्धार्थ प्रस्तुत होनेको कहना बाहुल्यमात्र है ।

(दोनोंका युद्ध और युधिष्ठिरका पलायन)

धर्मराज ! भागते क्यों हो ! मेरी अस्त्रविद्याकी भलीभाँति परीक्षा करो, अभी सम्यक्प्रकारसे अनुभव नहीं करासक्का (यह कहकर सिंहके समान गर्जता हुआ अपने दलको चला गया)

इति शालिग्रामवैश्यकृत श्रीअभिमन्युनाटकका प्रथम अंक समाप्त ।



श्रीः ।

अथ द्वितीय अंक ।



प्रथम गर्भांक.

(स्थान पाण्डवोंके डेरे. युधिष्ठिर भीमसेन और अभिमन्यु आदि विराजमान हैं)

भीमसेन—महाराज ! क्या उपाय किया जाय ? द्रोणाचार्य-रचित व्यूहको कोई भेदन नहीं करसक्ता, हम चारों भाई परास्त होगये अर्जुन संसप्तकोंसे युद्ध करने गया है उसके शिवाय कोई उस व्यूहका भेदन नहीं करसक्ता हाय हाय ! क्या पाण्डुकुलमें ऐसा कोई वीर नहीं रहा ? जो व्यूह भेद कर कौरवोंकी उन्मत्त सेनासे युद्धमें पाण्डवोंकी रक्षा करे ।

युधिष्ठिर—हा यह क्या विडम्बना है ? भाई ! मैं और कोई उपाय नहीं करसक्ता, हमारे दलमें कोइ वीर ऐसा बलवान् नहीं दीखता, जो द्रोणनिर्मित महादुर्गम्य चक्रव्यूह भेदन करसकै, इस समय हमारा अदृष्ट पराजय ज्ञात होता है क्या विधाता हमारे मस्तकपर अपमानके कलंकका टीका लगावेगा ?

भीमसेन—(दुःखित होकर) भाई ! यह तो बताओ अर्जुन आकर क्या कहैगा ?

युधिष्ठर—मैं भी इसी कारण व्याकुल हो रहाहूँ, उसके एक वार अनुपस्थित होनेसे इस प्रकार महादुर्घटना हुई; हा !

हम उसे मुख कैसे दिखावैंगे ? रे अदृष्ट भाग्य ! आज किस कुघडीमें द्रोणाचार्यने चक्रव्यूह निर्माण किया ?

अभिमन्यु-आर्य ! क्यों निराश होते हो ? चक्रव्यूह मैं भेदन करूंगा ।

भीम-वत्स ! तुम इस विषयमें क्या जानते हो ?

अभिमन्यु-पिता ! यह दास चक्रव्यूह भेदन कर उसमें प्रवेश करसक्ता है, परन्तु दुर्भाग्यसे प्रवेश करनेके शिवाय उससे निकलना नहीं जानता इसी कारण मेरा मन अग्रसर होनेमें डरता है ।

भीमसेन-बडे आश्चर्यकी बात है; वत्स ! प्रवेश करनेका उपाय तो तुम जानते हो परन्तु निकलनेका उपाय क्यों नहीं जानते ? यह अधूरी विद्या तुम्हें किसने सिखाई तुमको जिसने आगमशिक्षा प्रदान कर निकलनेका उपाय न बतलाया. क्यों उसने यह तुम्हारी अमूल्य विद्या असम्पूर्ण रक्खी ?

अभिमन्यु-ज्येष्ठतात महाशय ! निःसन्देह आश्चर्यका विषय वृत्तान्तभी कौतुकपूर्ण है, मुझे वे क्रमसे व्यूहभेदका उपाय ज्ञात हुआ है । जब मैं माताके गर्भमें था उस समय जननीने पितासे रणका वृत्तान्त पूँछा पिता युद्धका वृत्तान्त कहते कहते सहसा चक्रव्यूह और उसमें प्रवेश करनेका उपाय बतलाने लगे, माता सुनते सुनते सोगई, माताको निद्रित देख पिता भी चुप

हो गये, उन्होंने उस समय केवल प्रवेश करनेका उपाय वर्णन किया था, तबसे मुझको चक्रव्यूह भेदन करना आता है परन्तु निकलना नहीं जानता क्योंकि, पितासे प्रवेश करनेहीका वृत्तान्त सुना, निकलनेका वृत्तान्त नहीं सुना।

युधिष्ठिर–पुत्र अभिमन्यु ! मेरा एक वचन पूरा करो, आज तुम अपने पितृकुलका कलंक दूर कर इस महाविपत्तिसे हमारी रक्षा करो, वत्स ! तुम व्यूहके भीतर जानेका उपाय जानते हो इससे हमारा बहुत उपकार होगा, तुम बाहुबलसे व्यूह भेदन कर उसमें प्रविष्ट हो, हम सब तुम्हारे पीछे पीछे चलकर व्यूह-भेदनपूर्वक तुमको बाहर निकाल लावेंगे जोकि अर्जुन आनकर हमारी निन्दा न करे; तुम इसका शीघ्र उपाय करो. तुम, धनञ्जय, वासुदेव और प्रद्युम्न इन चारों जनोंके सिवाय और कोई चक्रव्यूह भेदन करनेका प्रयत्न नहीं जानता, इसलिये यह सब तुम्हारे पितृगण और सैन्यगण तुम्हारे मुखकी ओर देख रहे हैं कि क्या कहें, इस समय इनकी प्रार्थना पूर्ण कर इन्हें सुखी और निर्भय करो।

अभिमन्यु–आर्य ! जो आपकी आज्ञा, आपकी जयके अर्थ यह दास इसी मुहूर्तमें चक्रव्यूह भेदन करनेको प्रस्तुत है, आप मेरे पीछे २ आनकर देखें। दास आपके पुत्र कहलाने योग्य है वा नहीं, आज कौरवोंका यह अस्फालन वाक्य सुनाई देता है, कि, मुहूर्तमात्रमें क्रन्दनध्वनि पूर्ण होगी, द्रोणाचार्यने

मनमें विचारा है कि आज पिता और मामा न होंगे, इसलिये चक्रव्यूह निर्माण कर पाण्डवोंका विनाश करैं; परन्तु उनको- यह विचार करना अवश्य था कि पाण्डवोंका दासानुदास महा- वीर अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु अभी जीवित है ।

भीमसेन–वत्स ! चिरजीवी हो. तुम्हारी वार्तासेही हमारे मृतशरीरमें जीवनका सञ्चार हुआ. तुम्हारे व्यूह भेदन करतेही हम लोग उसमें प्रवेश कर कौरव कुल प्रधान प्रधान महारथि- योंका संहार करैंगे ।

अभिमन्यु–(प्रसन्न होकर) तात ! मैं पितृकुलके हितार्थ अवश्य संग्राममें जाऊंगा, प्राण रहैं चाहे न रहें आनन्दपूर्वक समरशय्यापर शयन करूंगा. इस समय सबके देखते केवल एक बालकके हाथसे समूल कुरुकुल निर्मूल होगा यदि आज लक्ष २ कुरुसैन्य विनष्ट न करूं तो मैं महावीर अर्जुनका औरस और सुभद्राका गर्भजात नहीं, यदि मैं अकेला रथपर चढकर अखिल क्षत्रिय सेनाको विध्वंस न करूं तो अपने आपको अर्जुनका पुत्र न कहलाऊँगा.

युधिष्ठिर–वत्स ! तुम्हारे मधुर वचन अमृतके तुल्य हैं, तुम्हारे बलकी वृद्धि हो, तुम चक्रव्यूह भेदन कर कौरवोंका विनाश करो, यही हमारा आशीर्वाद है ।

भीमसेन–वत्स ! आज तुम्हारे वचनोंसे हमको विश्वास हुवा कि तुम हमारा कार्य पूर्ण करोगे आवो तुम्हारा शिर

चुम्बन करैं. तुमको हृदयसे लगावैं (दोनोंने अभिमन्युका शिर चुम्बन किया)

युधिष्ठिर—वीरदेहस्पर्शसे स्वस्थ हुवा. (युधिष्ठिर और भीम दोनों गये)

अभिमन्यु—वीरप्रतिज्ञा कहती है " जावो २ युद्धस्थलमें जावो व्यूह भेदन कर पिता माताको सन्तुष्ट करो " इधर प्रेम अनुरोध करता है. " अभी विलम्ब करो. एक बार वह चन्द्र वदन देखो. जो सुख दुःख हर्ष विषादकी चिर सहचरी पतिव्रता प्राणप्यारी उत्तरा है. उसका मुखारविन्द आनन्ददायक है उसको देखकर युद्धमें जावो. " इस समय किसकी मानूं. मन प्रेमका आज्ञावर्ती होना चाहता है. वीरप्रतिज्ञा परास्त हुई जाती है प्रेमकी आकर्षणता मनको आकर्षण करती है. एक बार प्राणप्यारी उत्तरासे मिलतेही चलैं यदि युद्धमें मृत्यु होगई तो यही अन्तिम मिलन है. अरे यह क्या ! और कौन मनको खैंचकर हृदयद्वारमें आघातपूर्वक कह रहा है, " तुम अपनी माताके चरणारविन्दका दर्शन करते जावो. तुम्हारी स्नेहमय जननी तुमको विना देखे नितान्त व्याकुल है. एक बार उसको देख आवो " मातृभक्ति जननीके निकट लिये जाती है. जायँ माताका भी दर्शन करलें युद्धमें यदि मरण हो जाय तो उनसे भी यही अन्तिम दर्श पर्श है (प्रस्थान)

इति श्रीअभिन्युनाटकका प्रथम गर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय गर्भांक ।

स्थान पुष्पोद्यान ।

(गीत–गाती हुई सुनंदा और चित्रावती आई)

(गात)

सखी री तलफत बीती रैन ।
पिय प्यारेके दरश विना यह तरस रहे दोउ नैन ॥ १ ॥
त्रिविध समीर तीर सम लागत विषसम कोकिल बैन ॥
दिवस गिनत रसना अकुलानी परत न चितको चैन॥२॥
अवसर पाय जान अबला मुहिं अधिक सतावत मैन ॥
अब कबधौं अइहैं मनमोहन ! विरहिनको सुखदेन ॥३॥
उदित कहत न बनत कछु मोसम मोनहु रहत बनेन ॥
रक्त मांस नहिं रह्यो देहमें सूख सूख भई केन ॥ ४ ॥

सुनन्दा–अरी सखी चित्रावती ! तैंने भी सुना कि हमारी महारानी गर्भवती हैं ॥

चित्रावती–अरी ! यह कैसे ? तू तो कुछ सो सोकर जागती है तैंने यह बात कहां सुनी ?

सुनन्दा–अरी ! ऐसी बात कहीं छिपी रहे है, अपने आप प्रगट होजाय है ।

चित्रावती–चल झूँठी, मुझे तेरी झूँठी बातोंका विश्वास नहीं आता.

सुनन्दा—नहीं आता मत आओ, अपने घर बैठो. मैंने तो सची बात कही है ।

चित्रावती—चल दूर हो; अभी तो उत्तराने बारहवेंही वर्षमें पाव दिया है कहीं ऐसा होसक्ता है ।

सुनंदा—अरी ! कहीं हम तुम थोडेही हैं. जो इतनी अवस्थामें भी बालीही दिखाई देती हैं यह राजकन्या हैं वीर-पत्नी हैं बारहवें अठारहकी जान पडती हैं ।

चित्रावती—अरी ! तू कानों सुनी कहे है वा आँखों देखी?

सुनन्दा—मैं अपनी आंखोंसे देख आई हूँ, मुझे पराये कहेका विश्वास नहीं.

चित्रावती—तैंने अपनी आँखोंसे देखा कि उत्तरा गर्भ-वती है ?

सुनन्दा—निःसन्देह उत्तरा गर्भवती है. मैं कभी झूंठ नहीं बोलूँगी.

चित्रावती—तैंने कब देखा ?

सुनन्दा—कब कैसा ? मैं अभी देखकर चली आऊँ हूँ, दासियोंने जिस समय उत्तराका शिर गूँथा. पटिया ढाली, माँग सँभाली उस समय अचानक पवनके सञ्चारसे महारानीका अञ्चल उडा तब—

चित्रावती—तब तैंने क्या देखा ?

सुनन्दा-देखा क्या ? "सब तनमें पियराई छाई, उदर कछुक सखि दीर्घ दिखाई"

चित्रावती-अरी ! कोई रोग होगा ।

सुनन्दा-सखी ! और लक्षण सुन ।

दोहा-काले मुख भये कुचनके, ढरकगये इकसंग ।
उन्नति यौवनकी सखी, जो नित रहत उतंग ॥

चित्रावती-तो तू सच्ची है, मैं झूँठीही जानरही, परन्तु जो ऐसा है तो उत्तरा बहुत छोटी अवस्थामें गर्भवती हुई और युवराजभी अभी बालक हैं, यह वृत्तान्त उनकी मातानेभी सुना वा नहीं ?

सुनन्दा-मैं क्या जानूं ?

चित्रावती-उनकी माताको भी सुनकर बहुत सन्देह होगा ?

सुनन्दा-अब किसीके कहनेसे क्या होता है, जब दिन निकट आवेंगे तब सब कहानी खुलजायगी ।

चित्रावती-सखी ! बातोंही बातोंमें बहुत देर होगई अब चलो पहिले फूल बीनलें, महारानी आनकर फूलहार न देखेंगी तो बहुत रिसायँगी ।

सुनन्दा-आज जानै युद्धमें क्या हुआ ?

चित्रावती-युद्ध तो नित्य होताही रहै है इसका कहनाही सुनना क्या है, ऐसे मन्द मुहूर्त्तमें लडाई ठनी है न जानिये क्या

होना है ? ले इस मालतीकी सुहावनी लतासे सुन्दर सुन्दर फूल तो तोड,लडाईका मिटना तो बहुत कठिन है ।

(फूल बीनने लगी.)

गान ।

कुन्द और केतकीके हम अनोखे फूल लावेंगी ।
उन्हें चुन चुनके गजरें हार और माला बनावेंगी ॥
गलेमें डाल प्यारीके तपन तनकी बुझावेंगी ।
न माला सम कोई बन्धन यह प्यारीको जतावेंगी ॥
सजाकर सेज फूलोंकी उत्तराको बुलावेंगी ।
उसीपर प्राणप्यारी प्राणप्यारेको सुलावेंगी ॥
मनोरथ अपने मनका करके फिर झूला झुलावेंगी ।
होहो प्रसन्न शालिग्रामको चन्दन चढावेंगी ॥

सुनन्दा-अरी ! यह क्या ? गाते गाते मतवाली होकर इस लहलहाती लताके पत्ते और डालियें तोड डालीं ।

चित्रावती-हाय ! इन पत्ते डालियोंको टूटा देखकर जानै वह क्या कहेंगी ? इस मनोहर लतासे वह सहोदरी कैसा स्नेह रखती है ।

सुनन्दा-अरी सखी ! घबराय मत, मेरी विनती कर चरणोंमें गिरे तो मैं अपनी प्राणाधारसे कहकर तेरा अपराध क्षमा करादूंगी ।

चित्रावती–सखी ! मुझे बडी भावना होती है ।

सुनन्दा–सखी ! प्यारीने हमारी सम्मतिसे इस आम्रवृक्षके साथ माधवी लताका विवाह करदिया । देखो माधवी लता कैसी झुकी है, ऐसा विदित होता है कि यह आधानसे है उधर हमारी जीवनमूलभी इसकी साथिन हैं ।

चित्रावती–सखी ! यह आमका बिरवा मुरझा क्यों रहा है ?

सुनन्दा–ज्येष्ठ वैशाखकी कठिन धूप लगनेसे मुरझा गया होगा ।

चित्रावती–अरी ! कहीं धूप लगनेसे वृक्ष मुरझाते सुने हैं?

सुनन्दा–तो किसीने डेलाऊला बगेलकर मारदिया होगा ।

चित्रावती–आली ! यह वृक्ष उत्तराका बडा स्नेही है; जो यह सूखगया तो उत्तराको बडाभारी दुःख होगा ।

(उत्तरा गातीहुई आई)

राग सोरठा ।

चलो सखी देखैं बागबहार ।
पहनो सुन्दर चीर मनोहर, सजो सुभग शृंगार ।
शीतल करो हृदयको आली, वनके पुष्पनिहार ॥
जहँ तहँ फूलरही फुलवारी, मनकी मोहनहार ।
कहीं खिला बेला अलबेला, कहीं हार शृंगार ॥

शीतल मन्द सुगन्ध मलययुत, नितप्रति बहत बयार ।
तनकी तप्त बुझाय कर तहँ, आनँद सहित बिहार ॥
अम्बकी डार कोयलिया बैठी, कूकत बारंबार ।
यह वसन्त थिर सदा न रहि है, शोभा है दिन चार ॥
गगन धरन सब जरत अनलसम, रविको तेज अपार ।
मधुर बोलनेहारे पक्षी, छिप गये गुफन मँझार ॥

सुनन्दा–आओ आली ! तुम्हारा शरीर बहुतकी शिथिल होगया ।

उत्तरा–अरी ! क्यों मेरी हँसी करोहो ।

चित्रावती–क्या राजकुमारी सत्यही गर्भवती है ? देखूं ।

उत्तरा–क्या देखेगी ? क्या तू भंग पी आई है ? जो मतवालियोंकीसी बातें करे है ।

सुनन्दा–तुम लज्जासे मत कहो, परन्तु हमें झूंठी क्यों बनाओ हो, क्या हम झूँठ बोलें हैं ? अच्छा तो दिखादो ।

उत्तरा–नहीं प्यारी ! तुम्हारी बात सची है ।

सुनन्दा–तो यह कहो ।

चित्रावती–इस समय हमको कुछ पारितोषिक देना चाहिये ।

उत्तरा–सखियो ! क्यों मुझे लजाओहो ? जो सदा दुःख सुख सम्पत्ति विपत्तिकी साथी है उनके मुखसे यह बात सुन बडी लज्जा आती है ।

सुनन्दा–हम तुम्हारे सुख दुःखकी साथी हैं तबहीं तो हमको पारितोषिक मिलना चाहिये ।

उत्तरा–तुम मतवाली हो; पारितोषिक कैसा ? मैंही तुम्हारी हूं ।

चित्रावती–अब इस बातको जाने दो प्यारी ! तुमनें हमारी गूंथी पुष्पमाला देखी ?

(दोनों सखी)

गान ।

माला अनुपम आज बनाई ।
कली कलीपर नाम तुम्हारो चित्र सहित छबि छाई ॥
बिचबिच नाम तुम्हारे पीको जहँ तहँ देत दिखाई ॥
रति पति अति लजात मनहींमन भूलगई चतुराई ॥
रम्भा कहै अचम्भा कैसो सची फिरै घबराई ॥
दे उपहार हारको आली लख इसकी सुघराई ॥
तुम्हरे हेत प्रिया सुख देनी रुचिसों रुचिर सजाई ॥
पहर पिया सँग बिहरहु वनमें करो तासु मनभाई ॥
" शालिग्राम " माल अनुपम जनु, कलपवृक्षसों पाई॥

उत्तरा–सखियो ! क्षणमात्रको चुप तो रहो; उद्यानके निकट रथके पहियोंका घरघराहट शब्द होता है कोई आता दिखै है ।

चित्रावती—आली ! अब तो शब्द सुनाई नहीं आता क्या रथ थम गया ?

सुनन्दा—सारथिके साथ युवराज आते हैं ।

उत्तरा—चलो हम सब मन्दिरमें बैठें (सब गईं)

(अभिमन्यु और सारथिका प्रवेश)

सारथि—आयुष्मान् ! पाण्डवोंने आपको अत्यन्त गुरुभार सौंपा है ऐसे कठिन कार्यमें बहुत विचार करके प्रवृत्त होना चाहिये आप सदा सुखमें रहे हैं और द्रोणाचार्यको तो आप जानतेही हैं कि, कैसे बलशाली रणपण्डित और दिव्यास्त्रविद्यामें कुशल हैं ।

अभिमन्यु—सारथे ! द्रोणाचार्य क्या वस्तु है यदि गणसहित ऐरावतारूढ स्वयं वज्र हाथमें लिये देवराज इन्द्र आज हमारे विरुद्ध युद्धमें मेरे सन्मुख आवैं यदि स्वयं यमराजगण रणभूमिमें मुझे बुलावैं तोभी मैं अवश्य युद्ध करूंगा, मैं क्षत्रिय महावीर अर्जुनका पुत्र होकर क्यों द्रोणाचार्यसे भय करूं ! शत द्रोणाचार्य, शत दुर्योधन, शत जयद्रथ रणमें आजायँ तो भी मैं पितृकुलहितार्थ युद्ध करूंगा ।

सारथि—महाराज ! धन्य है आपके साहसको, आपके कहने योग्य यही दृढवाक्य है; परन्तु आप बालक अप्राप्त यौवन महारथी धनञ्जयके जीवन स्वरूप हो, विशेष सावधा-

नीसे युद्ध करना होगा; क्योंकि चक्रव्यूह भेदन करना महाकठिन है; व्यूहद्वारमें सिन्धुराज जरासन्ध जयद्रथ द्वितीय कृतान्तके समान अडे खडे हैं उनसे युद्ध करना बडे शूरवीरोंका काम है।

अभिमन्यु—युद्धमें जय पराजय दैवाधीन है, सारथे ! वृथा क्यों डरते हो ? तुम इस वनके निकट थोडी देर रथको थामे खडेरहो; मैं शीघ्रही आता हूं ।

सारथि—जो महाराजकी आज्ञा (प्रस्थान)

अभिमन्यु—हे प्रिया उत्तरे ! निकट आओ मैं अपने नेत्रोंसे तुम्हारा चन्द्रवदन देख अपने चित्त चकोरको प्रसन्न करूं।

उत्तरा—नाथ ! सारथिसे आप क्या कह रहे थे ?

अभिमन्यु—प्रिया ! आज पांडवोंकी ओरसे मैं सेनापति हुवा हूं; उनकी आज्ञा पालन करनेके लिये मुझे युद्धमें जाना होगा तुम्हारे नेत्रोंमें आंसू क्यों हैं ?

उत्तरा—हृदयनाथ ! अभागिनीका अपराध क्षमा करो आज युद्धम मत जाओ ।

अभिमन्यु—प्राणेश्वरी ! गुरुकी आज्ञा उल्लंघन करना महापातक है, प्रथम और द्वितीय ज्येष्ठ तातके अनुरोधसे युद्धमें जाना होगा ।

उत्तरा—जीवनाधार ! मैं कभी नहीं जाने दूंगी

अभिमन्यु—प्रिये ! क्यों ?

उत्तरा-मेरे प्राण रोरो उठते हैं हृदय विदीर्ण हुवा जाता है. चारों ओर अन्धकारही अन्धकार दृष्टि आता है हे प्राणपति ! हे हृदयाधार ! ! हे जीवनसर्वस्व ! ! ! दुःखिनीको दुःखसागरमें छोडकर मत जाओ ।

अभिमन्यु-उत्तरे ! प्रियतमे ! ! जीवनेश्वरि ! ! ! स्थिर हो ऐसा मत कहो ।

उत्तरा-स्वामिन् ! मेरे मनमें शंका उत्पन्न होती है (पतिका हाथ पकडकर) मैं तो कभी नहीं जानेदूंगी ।

अभिमन्यु-प्राणेश्वरी ! वृथा अमंगलकी आशंका मत करो तुम्हारे भयका कोई कारण नहीं है, जिसके पिता महारथी अर्जुनवीर भगवान् वासुदेव जिसके मामा उसको कैसा अमंगल और क्या चिंता ? जिन श्रीकृष्णका नाम स्मरण करनेसे कोटि कोटि विपत्ति दूर भागती हैं, वह अचिन्त्य चिन्तामणि जिसके मामा; प्रिये ! आजदिन जिस महावीरकी अनिवारित शरधाराप्रवाहसे त्रिभुवन कम्पायमान और पृथ्वीमें जिसके समान कोई बलवान् नहीं, वह हमारे पिता, फिर हमको क्या भय ? उत्तरे ! हमें कोई विपत्ति होसक्ती है ? केवल विरहवाण तुम्हारे कोमल हृदयको बिद्धाकर तुम्हें नानाप्रकारकी यंत्रणा देते हैं, तुम्हारा सन्देह नितान्त अलीक है; अब मैं रणको जाऊंगा प्रसन्नमनसे बिदा दो ।

उत्तरा-(नेत्रोंमें जल भरकर) हा ! न जाने विधाताने मेरे भाग्यमें क्या लिखा है ? स्वामिन् मैं तुम्हें युद्धमें कैसे जानेदूं, यदि आप मेरी बात न मान युद्धमें प्रस्थान करो तो प्रथम मुझे वध करते जाओ ।

अभिमन्यु--अमृतमयी प्राणवल्लभे ! शान्त हो, तुम्हारे नेत्रोंमें अश्रु देख मुझे दुःख होता है ।

उत्तरा-प्रियतम ! मुझे त्याग कर मत जाओ, तुम्हारे विना मेरा कौन है ?

(सुभद्राका प्रवेश)

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ! क्या तू आज युद्धमें जायगा ?

अभिमन्यु-ज्येष्ठ तातकी अनुमतिसे संग्राममें जाता हूँ ।

सुभद्रा-वत्स ! तेरा युद्धमें जाना, शत्रुदमन करना, परमानन्दकारक है; परन्तु इस सम्बादको सुनकर प्राण क्यों व्यथित होते हैं ?

अभिमन्यु-जननी ! क्षत्रिसन्तानके युद्धमें जानेसे वीरमाता भीत हो यह बडे आश्चर्यकी बात है ।

सुभद्रा-अभिमन्यु ! निःसन्देह मैं वीरमाता, वीरपत्नी हूँ, एक समय रणस्थलमें अश्वोंकी लगाम पकडकर तुम्हारे पिताकी सहायता की; पुत्र ! मैं युद्धसे भीत नहीं हूं, परन्तु यह तो बताओ कि, आज हृदय क्यों कातर होता है ? इसका भेद विना बताये आज तुम युद्धमें मत जाओ !

अभिमन्यु—जननी ! क्षमा करो,यह क्या तुच्छ सन्देह है।

सुभद्रा—यह क्या ? यह क्या कर रहा है ? आज मैं तुझे युद्धमें न जानेदूंगी दहिना अंग फडकता है; चित्तमें नाना-प्रकारकी शंकायें उदय होती हैं; इसलिये आज तुम युद्धमें न जाने पाओगे। आज मैंने सुना है कि कौरवोंके भयंकर युद्धमें पाण्डवगण परास्त हो रणस्थलमें तुझे भेजते हैं आज मैं अपने पुत्रको कभी न भेजूंगी चाहे जो कुछ होजाय।

अभिमन्यु—माता ! क्षमा करो; यह आज्ञा मत दो, पितृकुलनिमित्त आज अवश्य युद्धमें जाना होगा क्योंकि आज मैंने जेष्ठ तातके सन्मुख प्रतिज्ञा की है; माता ! क्षमा करो मातृआज्ञा उल्लंघन और प्रतिज्ञा त्यागन दोनोंही महापाप हैं जननी ! मैं कौनसे पापमें लिप्त हूं ? तुम्हारी आज्ञा विना एक पग आगे नहीं रखसक्ता, परन्तु प्रतिज्ञाके अनुरोधसे पितृकुलके हितार्थ वीरत्वकी प्रेरणासे शीघ्रही रणभूमिमें उपस्थित होना होगा; जननी ! यह निष्ठुर आज्ञा निवारण कर अनुमति प्रदान करो।

सुभद्रा—पुत्र ! सन्तानके कारण माताके प्राण कैसे व्याकुल होतेहैं, इस बातको सन्तान नहीं जानती; जिसके पुत्र हैं, वही जानता है कि, पुत्र क्या पदार्थ है निस्सन्तान पुत्रकी ममताको क्या जाने, मैं कभी तुझे युद्धमें न जाने दूंगी.

अभिमन्यु–माता ! कातर मत हो विचारो तो सही कि मैं किसका पुत्र ? किसका भागिनेय ? किसका भ्रातृपुत्र हूं ? यदि मैं कायर पुरुषोंकी नाई युद्धसे विमुख होजाऊं तो हमारे पिता, मामा, ज्येष्ठतात और पितृगण सबही महान् कलंकके भागी होंगे.

सुभद्रा–अरे पुत्र ! क्या तेरी अवस्था युद्धमें जाने योग्य है ? तू बालक समरके भयानक क्लेश और निर्दयी निष्ठुर निर्ममता कौरवोंका अस्त्रघात कैसे सहन करेगा ।

अभिमन्यु–जननी ! शत्रुके अस्त्रघातसे डरकर युद्धसे विमुख होना वीरोचित कार्य है ? यदि मैं युद्धसे विरत हूं तो फिर तुम्हें माता कहने योग्य न रहूँगा, कायरोंमें मेरी गणना होगी, अतः अब प्रसन्न मनसे आशीर्वाद दो, जो कि, युद्धमें जय प्रात कर तुम्हारे श्रीचरणका दर्शन करूं ।

सुभद्रा--मैं तेरी बात कदापि न सुनूंगी ।

(नेपथ्यमें भेरीनाद होता है)

अभिमन्यु--(घबराकर) देखो जननी ! शृङ्गनान्दीगण उच्चस्वरसे शृंगनाद कर रहे हैं; सेना कुलाहल कर रही है, सब वीर उत्साहसे उत्साहित हो मेरी अपेक्षा कर रहे हैं, किञ्चित ध्यान धरकर सुनो ! ज्येष्ठतात भीमसेन सैन्यगणसे मेरेही विषयमें वार्ता कर रहे हैं.

सुभद्रा-पुत्र ! मैं तुझे कभी नहीं त्यागन करूंगी, आज मैं सिंहनी बन अपने प्यारे वत्सकी रक्षा करूंगी, मैं मार्ग घेरकर खडी हूं, देखूं ! कौन मेरे प्राणप्यारे वत्सको मेरे सन्मुखसे लेजायगा ?

(फिर नेपथ्यमें शब्द हुआ, अभिमन्यु क्या विलम्ब है शीघ्र आओ)

अभिमन्यु-(अकुलाकर) माता ! सुना ? ज्येष्ठतात युधिष्ठिर क्या कह रहे हैं ?

सुभद्रा-वह जो चाहे सो कहो, परन्तु मैं तुम्हें कभी न जाने दूंगी ।

अभिमन्यु-(माताके चरण ग्रहणकर) माता ! क्षमा करो ! तुम्हारी सम्मति विना प्रतिज्ञाहीका करना अन्याय हुआ (चरणोंमें शिर धरकर) हे माता ! अब तो मेरा अपराध क्षमा कर, आगेको कोई काम तुम्हारी आज्ञा विना नहीं करूंगा अब आज्ञा देदे; और हे जननी ! जो इस समय संग्राममें मैं न गया तो सब संसारमें मेरा उपहास होगा ।

सुभद्रा-पुत्र ! तेरे चरण ग्रहण करनेसे आशीर्वाद देती हूँ, चिरजीवी हो, आ, तेरा शिर चुम्बन करूं, परन्तु बारम्बार मैं यही विचारूंहूं कि, कौनसे प्राणसे तुझे रणमें भेजूं ? प्राण यह कदापि न कहेंगे. क्योंकि कई दिनसे मेरे आगे अन्धकारही

अन्धकार दिखाई देता है और नेत्रोंसे क्षणमात्रको आंसू नहीं थमते बहुतेरा मनमें धैर्य बांधू हूँ परन्तु हृदय भीतरसे उमडाही चला आता है न जानिये क्या होना है ?

(सुभद्रा और उत्तरा दोनों गईं)

(भीमसेनका प्रवेश)

भीमसेन—वत्स ! इतना विलम्ब क्यों ?

अभिमन्यु—जननीके निकट बिदा मांगने और प्रार्थना करने आया था. सो उसकी असम्मति है ।

भीमसेन—दुर्बल हृदय स्त्री, पुत्रको रणमें नहीं भेजती हैं. वत्स ! तुम इस कारण विलम्ब मत करो शीघ्र चलो ।

अभिमन्यु—मातृ आज्ञा भंग करना महापाप है ।

भीमसेन—सो पाप मुझे दो. मैं इस पापका भागी हूंगा तुम शीघ्र चलो ।

(अभिमन्यु और भीमसेन जाते हैं और जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमयुन्नाटक शालिग्राम वैश्यकृत द्वितीय अंक समाप्त ।



श्रीः ।

अथ तृतीय अंक ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान युद्धस्थल व्यूहद्वार)

(जयद्रथ और दुर्योधन परस्पर विचार कररहे हैं)

जयद्रथ—पाण्डवोंको आज परास्त कर यदि उनके दम्भका चूर्ण करूं तब मेरे मनका आक्षेप निवृत्त हो क्योंकि युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि समस्त योद्धा कौरवोंसे परास्त हुए हैं परन्तु अर्जुन—

दुर्योधन—पाण्डवोंका पुनः युद्धमें प्रवृत्त होना आश्चर्य है ।

जयद्रथ—मैंने सुना है आज पाण्डवोंका नवीन सेनापति अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु होकर समरमें आता है ।

दुर्योधन—अभिमन्यु वा और कोई हो आज युद्धमें किसीका निस्तार नहीं, जो आज आश्चर्यके व्यूह भेदन करनेमें उत्सुक होगा निश्चय वह यमालय गमन करेगा; जिस व्यूहमें शत शत राजा, राजकुमार, रथी, सेनाध्यक्ष, कृतान्तके समान अवस्थान कर रहे हैं ।

जयद्रथ—मैं प्रण करके कहताहूं कि आज निश्चयही कौरवोंकी जय होगी क्योंकि अर्जुनके सिवाय पृथ्वीमें ऐसा कोई

वीर नहीं जो सप्तरथी वेष्टित व्यूह विच्छिन्न करे, आज देखेंगे कि अभिमन्यु कैसा वीरपुत्र है।

दुर्योधन–वह तो बालक है. उसका मारनाही क्या बडी बात है जैसे होसके वैसे आज उसको विनष्ट कर मनोवांछा पूर्ण करेंगे, अभिमन्यु, अर्जुनका जीवनस्वरूप है यदि उसकी मृत्यु हुई तो अर्जुन पुत्रशोकसे कातर हो प्राण त्याग करेगा, और उसके प्राण त्याग करनेसे कुरुकुल निष्कंटक होगा।

जयद्रथ–अर्जुनके सिवाय और सब पाण्डवोंको महादेवके प्रसादसे परास्त करसक्ताहूं।

(द्रोणाचार्यका प्रवेश)

दुर्योधन–गुरुदेव ! पाण्डव तो परास्त होगये; आज अवश्य हमारी जय होगी।

द्रोणाचार्य–इस समय धनञ्जयतनय अभिमन्यु संग्राममें आया है।

जयद्रथ--जब बडे २ हाथी घोडे पाताल चले गये, और युधिष्ठिर, भीम प्रभृति योद्धा हार मान गये, तो यह क्षुद्र बालक आनकर क्या करेगा ?

द्रोणाचार्य–जयद्रथ ! पार्थनन्दन अभिमन्यु सामान्य बालक नहीं है, पिताकी अपेक्षा पुत्रसे अधिक भय होताहै क्या रामचन्द्रसे लव कुश न्यून थे ? जो हो तुम अति सावधा-

नीसे द्वार रक्षा करो, दुर्योधन ! तुम व्यूहमध्यमें अवस्थान करो नेपथ्यमें शब्द हुआ, जय धर्मराज युधिष्ठिरकी जय हो।

द्रोणाचार्य—यह अभिमन्यु रणभूमिमें आगया, शीघ्र अपने २ स्थानपर जाओ।

(दुर्योधन और द्रोणाचार्य गये)

(नेपथ्यमें शब्द हुआ जय महाराज युधिष्ठरकी जय हो)

(नेपथ्यमें दूसरी ओरसे शब्द "यतो धर्मस्ततो जयः" महाराज युधिष्ठिरकी जय).

जयद्रथ—"यतो धर्मस्ततो जयः" महाराज दुर्योधनकी जय; कौरवकुलकी जय; आज देखें पाण्डव धर्मसे कैसे जयलाभ करेंगे; मैं सेनाको श्रेणीबद्ध कर आऊँ (प्रस्थान)

(युधिष्ठिर भीम और अभिमन्युका प्रवेश)

अभिमन्यु—पिता, माता, मातुल और समस्त गुरुजनोंके चरणारविन्दोंको प्रणाम करके व्यूह भेदन करताहूं।

युधिष्ठिर—वत्स ! जगदीश्वरके निकट यही प्रार्थना है कि युद्धमें जय प्राप्त हो तुमने हमारा मुख उज्ज्वल किया है और पाण्डवकुलका मान रख लिया है तुम व्यूह भेदन कर उसमें प्रवेश करो, हम सब तुम्हारे पीछे २ चलैंगे।

भीमसेन—वत्स तुम मार्ग कर दो मैं इसी समय इस गदाके आघातसे दुर्मति दुर्योधनकी जंघा तोड अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूं और दुःशासनका हृदय विदीर्ण कर उसका रक्त पानकर

अपनी तृषा निवारण करूं किसी प्रकार एकबार व्यूहके भीतर पहुँच जाऊँ ।

अभिमन्यु—आप गोलोकपति विष्णु अवतार श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णानन्द वृन्दावनविहारी जगत् हितकारी जिसके सारथि हो सदा जिसे सखा सखा पुकारते हैं, उस महावीर पार्थका पुत्र अभिमन्यु धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे समरमें जाता है देखूं भीरु कुरुकुल कितने दिन और छिप छिपकर शठता करता फिरेगा । (सन्मुख जाकर) अरे दुराचारियो ! कितने दिन और इस घोर पापानलमें रहोगे ! अरे पशुपालक कौरवो ! सज्जित हो सज्जित हो ! अरे कपटी लम्पटाचारी ! नारकी दुर्जन प्रस्तुत हो ! आज तुम्हारी समरवासना पूरी होगी आज शतशः यमदूत तुमको लेनेके लिये नरकोंसे आवेंगे उन नरकोंमें महाघोर अन्धकार होगा, अग्नि जलती होगी, अरे नीच पापी दुर्योधन ! तेरेलिये भयंकर रौरव नरक खुला है, अरे अत्याचारी ! यह क्या तुच्छ व्यूह है ? महार्णव (समुद्र) के रोकनेको बालूका बन्धन ? अरे क्षुद्रक जयद्रथ सिन्धुराज ! क्या व्यूहद्वारकी रक्षा कर रहा है ? धन्य धन्य पापी ! तुझे धन्य है ! द्वारपर खडा रह, मैं बालक तू युवा, परंतु तोभी मेरा विक्रम देख आज भीम विषधर भुजंगदशनसम अभिमन्युके शरघात कौन सहैगा, अरे नराधम ! पलायन कर तेरा तेज प्रताप देखलिया, वह दुर्योधन क्या है ? अरे कुरुकुल चूडामणि चक्रवर ! यह

क्या ? यह कैसी विडम्बना है ? तुम समरमें क्यों क्लेश सहन कररहे हो ? जाओ रणवासमें गमन करो, तुम्हारी नारियें रुदन कर रही हैं, अरे राजाओ ! मेरे धनुषपर यह बाण चढ रहा है क्यों अपने प्राण गमाओ हो, भागो भागो (यह कह अभिमन्युने चक्रव्यूहमें प्रवेश किया; उसके पीछे पीछे युधिष्ठिर और भीमसेन का गमन)

(क्रोध करताहुआ जयद्रथ आया)

जयद्रथ–कौन हो ? इधर देखो ! बिना बूझे कहां जाते हो जानते नहीं हो स्वयं सिन्धुराज जयद्रथ द्वाररक्षा कर रहा है पहिले मुझसे निष्कृति पाओ तब व्यूहमें प्रवेश करना ।

भीमसेन–दुराचारी जयद्रथ ! व्यूहद्वारपरसे हट जा, नहीं तो अभी गदाघातसे तेरा मस्तक चूर्ण करूंगा ।

जयद्रथ–अरे भीम ! पदाघातसे तेरा दम्भ भञ्जन करूंगा मेरे सम्मुख आनकर युद्ध कर, मुझको परास्त करके व्यूहमें प्रवेश करने पावेगा ।

भीमसेन–अरे अधर्माचारी नराधम ! आ, तेरी युद्ध-वासना पूर्ण करूँ (दोनोंका युद्ध, और पराजित होकर भीम-सेनका प्रस्थान)

युधिष्ठिर–सिन्धुपति ! मार्ग छोडो, एकाकी निःसहाय बालक शत्रुओंके मध्यमें गया है, वह बालक रणपण्डित योद्धाओंकी समता नहीं करसक्ता; जयद्रथ ! अधर्म मत करो,

अभी अभिमन्यु अप्राप्तयौवन कुमार है, तुमको न्याययुद्ध करना उचित है ।

जयद्रथ–धर्मराज ! धर्मको आपही लेकर चाटो, हमारा धर्म यही है जिस प्रकार हो सके उस प्रकार शत्रुका विनाश करें, हमारा और धर्मसे कुछ प्रयोजन नहीं, आप यह भले-प्रकार विचारलें मैं विना युद्ध किये द्वारका मार्ग नहीं छोड़-सक्ता। (जयद्रथका प्रस्थान)

युधिष्ठिर–हा ! क्या करनेकी इच्छा थी, क्या हो गया ? हा ! क्या हुआ ! एकाकी अभिमन्युको क्या यह दुराचारी जीता छोडेंगे, हा !

(नेपथ्यमें शब्द हुआ महाराज युधिष्ठिरकी जय)

(फिर नेपथ्यमें शब्द हुआ कि सर्वनाश हुआ जाता है, सबका काल आन पहुँचा एक बालक आज कुरुकुलको छिन्नभिन्न करे डालता है. भागो भागो यह अवश्य हमारा विनाश करेगा आज किसी प्रकार निस्तार नहीं)

युधिष्ठिर–देखो ! अभिमन्यु किस प्रकार विपुल वीरत्वसे युद्ध कर रहा है,कौरवसेना भागी जाती है, परन्तु तोभी मुझको यह सन्देह है कि अकेला बालक कबतक लडैगा हाय ! क्या किया ? जयद्रथने व्यूहद्वार अबतक नहीं छोडा, अब क्या उपाय करैं अरे अधर्माचारी; नरपिशाच जयद्रथ ! पापमति कौरवगण ! क्या यही तुम्हारा क्षत्रियपनका न्याय युद्ध, रणधर्म है ? क्या यही महारथियोंकी प्रथा कही जाती है ?

(जयद्रथका प्रवेश)

जयद्रथ–धर्मराज ! पलायन करो, तुम्हारी मृत्यु निकट आई, (दोनोंका युद्ध तदनन्तर युधिष्ठिरका प्रस्थान)

(दुर्योधनका प्रवेश)

दुर्योधन–सिन्धुराज ! क्या उपाय करैं ? अभिमन्युके शरजालसे समस्त सेना छिन्न भिन्न होगई, उसके निक्षिप्त सायकोंके सन्मुख कोई नहीं ठहर सक्ता; हमारी ओरके शत शत नृपति शत शत राजकुमार और अपर अपर वीर सब निहत होगये, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, भूरिश्रवा, द्रोणाचार्य, सोमदत्त प्रभृति सबही परास्त हुए हैं, अब क्या करना चाहिये ? यह सोलह वर्षकी अवस्थाका बालक आज कुरुवंशका विध्वंस करे डालता है !

जयद्रथ–द्रोणाचार्य और उनकी सेना कहां है ?

दुर्योधन–उनकी सेना अभिमन्युके संहारार्थ सर्पसदृश शरजालमें गगनमण्डलसमाच्छन्न हो रही है, वह बीचमें विक्षोभित सागरसदृश हो, मानो सबको लीले लेता है, क्या होगा ?

जयद्रथ–आचार्य क्या करते हैं ?

दुर्योधन–ज्ञात होता है वह मोहसे अभिमन्युका वध नहीं करते, यदि ऐसा न होता तो अबतक पृथ्वीसे अभिमन्यु नाम उठ गया होता। यदि वह निधनोद्यत हो युद्ध करें तो मनुष्य

तो एक ओर है उनके निकट यमका भी निस्तार नहीं होसक्ता. परन्तु धनञ्जय उनका स्नेही शिष्य है । इसी कारण अभिमन्यु अबतक जीवित है ।

जयद्रथ–बडा अन्याय है! इस समय कर्ण कहां है?

दुर्योधन–सब अभिमन्युके शराघातसे कातर हो भाग गये । कर्ण कहां है बहुत देरसे उसको देखा नहीं! सेनाकी श्रेणी बनी बनाई भंग होकर छिन्न छिन्न होगई ।

जयद्रथ–सर्पका बच्चा पिता मातासे भी भयंकर बोध होता है मेरी बुद्धिमें यह आता है कि, कर्णके अभिमतानुसार युद्ध करना उचित होगा, न्याययुद्धसे अभिमन्युका वध नहीं होगा, एक काम करो–द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, कर्ण, दुःशासन; शल्य और आप यह सात जन एकत्र होकर अभिमन्युको सात ओरसे घेरो और एक कालमेंही सब मिलकर शर संधान करो; इसके सिवाय अभिमन्युके मारनेका कोई और उपाय नहीं है ।

(दुःशासनका प्रवेश)

दुर्योधन–भाई क्या संवाद है?

दुःशासन–क्या पूछते हो? संवाद बडा भयानक है, देखते देखते सागरमें द्विगुणी तरंगें उठने लगीं, अभिमन्युके हाथसे शल्यका कनिष्ठ भ्राता! और कहते एहु चित्त व्याकुल होता है! परन्तु कबतक न कहूं तुम्हारा...रणमें मारागया ।

दुर्योधन—मेरा पुत्र मारागया ? हाय ! अब क्लेश नहीं सहाजाता, हा जीवनमूल ! हा प्राणाधार ! हा पु.... (यह कह मूर्च्छित होगया. कुछ कालोपरान्त सचेत हो) अभी दुरात्माके बध करनेका उपाय निकालता हूँ हाय ! (हृदय फट गया ।)

जयद्रथ—महाराज ! यह कातरताका समय नहीं (साव. धान होकर) दुःशासन ! फिर क्या हुआ ?

दुःशासन—महाराज ! अभिमन्यु बडा भयंकर युद्ध कर-रहा है. ऐसा लघुहस्त मैंने कहीं नहीं देखा, शरग्रहण निक्षेप दृष्टि गोचर नहीं होता उसका झुककर शरासन संधान करना शरद्-कालके सूर्यमण्डलकी नाईं दृष्टि आता है उसका विक्रम क्या है आश्चर्य विक्रम है, इतनी शीघ्रतासे परिभ्रमण करता है कि देखनेसे सब ओर अभिमन्युही अभिमन्यु ज्ञात होता है, ऐसी समरनिपुणता न देखी न देखेंगे ! कर्ण अभिमन्युके शराघातसे व्यथित हो रणमें विरथ होगये एक बालकसे आज कुरुवंश विध्वंस हुआ ।

(द्रोणाचार्यका प्रवेश)

द्रोणाचार्य—यह देखो महावीर पार्थतनय अभिमन्यु ! कौरवोंको प...रास्त कर अपने शिविरमें जाता है इसके समान युद्धविशारद धनुर्धर और कोई पृथ्वीमें नहीं है, यदि यह

महारथी चाहे तो समस्त कौरवोंको अकेला संहार कर सक्ता है, परन्तु क्यों नहीं करता यह बात मैं कह नहीं सक्ता ।

दुर्योधन—यही होनेसे आपकी मनोकामना पूर्ण होगी? अर्जुन आपका प्रियतम शिष्य उसका पुत्र आपको और भी अधिक प्रिय, उसकी जयसे ही आप संतुष्ट होंगे क्या हम आपके शत्रु हैं ?

दुःशासन—राजन् ! अब नहीं सहा जाता; अब फिर रणमें जाकर जिस रीतिसे हो सकेगा उस रीतिसे आज अभिमन्युका वध करूंगा, व्याघ्र जैसे मृगशिशुका वध करता है वैसेही आज मैं पाण्डव और पांचालोंके सन्मुख अभिमन्युका संहार करूंगा । देखूं ! किसमें इतनी सामर्थ्य है, जो उसकी रक्षा करै ।

(शीघ्र प्रस्थान)

दुर्योधन—गुरुदेव ! क्षमा करो, यदि आप मेरी सहायतासे विमुख होंगे तो मैं आपके समक्ष अपना प्राणघात करूंगा वा अपने बाणका मुझेही लक्ष बनाओ—मेराही वध करो ।

द्रोणाचार्य—दुर्योधन ! शान्त हो मैं क्या करूं जो तुम कहो सो करूं; आज मैंने जो व्यूह निर्माण किया था किसीकी सामर्थ्य न हुई जो उसे भेदन करै परन्तु तुमने अपने नेत्रोंसे

देखलिया कि, किस प्रचण्ड विक्रमसे अभिमन्युने उस व्यूहको भेदन किया।

दुर्योधन—यातो प्रथम आप मेरा वध करैं; नहीं मैंही आप अपना आत्मघात करता हूं!

जयद्रथ--गुरुदेव! क्या आप अपनी प्रतिज्ञा भूल गये?

(दुःशासन और अभिमन्युका युद्ध)

अभिमन्यु—अरे पापिष्ठ दुःशासन! आज तो भाग्यसे तू मेरे सन्मुख आया है तुमने जो सभामें सबके आगे महाराज युधिष्ठिरको मर्मपीडा, धनके मदमें मत्त हो कपटद्यूतमें लिप्त हो महावीर भीमसेनको दुर्वाक्य कहे आज उसका उचित्त पावेगा; दुर्मति! आज तू राजद्रोह, परस्त्रीहरण और हमारे पितृराजहरण करनेका फल ले, यदि तू औरोंकी नाईं प्राणभयसे समरभूमि त्याग न करेगा तो निश्चयही आज तेरी देहको काक, शकुनि भक्षण करैंगे, (अस्त्राघात)

दुर्योधन—आचार्य! रक्षा करो, रक्षा करो, दुःशासनकी रक्षा करो, जयद्रथ और दुर्योधनादि योद्धा एक कालमें शरत्याग करते हैं और अभिमन्यु सबको परास्त करता है और जवनिका गिरती है।

इति श्रीअभिमन्यु नाटक प्रथम गर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय गर्भांक ।

(स्थान उद्यानके निकट देवमन्दिर)

उत्तराका प्रवेश ।

उत्तरा–हाय ! लाजने प्राणनाथसे दो बातेंभी न करने दीं, हा विधाता,! आज कैसे कैसे अशुभ उदय होते हैं, न जाने इस अभागे भाग्यमें क्या लिखा है ? दक्षिणांग बारम्बार फडकता है, दोनों नेत्रोंमें आपही आप आँसु चले आते हैं, प्राण रह-रहके रुदन करते हैं, अब प्रियतमके विना देखे मन नहीं मानता, विवाहके दिनसे आज तक सदा सुखसे एकत्र रहे कभी विर-हका नाम न जाना, सो आज विधाताने वह सब सुख नाश करदिया और मुझ अभागिनीके हृदयमें विरहका दारुण घात कर प्राणनाथको स्थानान्तरमें भेजा; स्थान–महाभयानक स्थान–यमराजकी क्रीडाभूमि मनमें विचारनेसेही शरीर थरथर काँप उठता है, नहीं नहीं मुझको इन बातोंसे क्या प्रयोजन ? (क्षणोपरान्त) हाय ! फिर कुभावनाकी लहरैं मनमें उठती हैं और यह मन चञ्चल किसी प्रकार वशमें नहीं होता, अब फिर कुशंका उदय होती है, कु. ? ना, मेरे भाग्य तरुवरमें कुफल नहीं फलैगा; क्योंकि मैं महावीर धनञ्जयकी पुत्रवधू विश्वनाथ भगवान् वासुदेवकी भागिनेवधू, राजा विराटकी पुत्री, मेरा अदृष्ट खोटा नहीं है नाथ ! अवश्यही रणसे विजय कर अपनी दासीके निकट इस प्यासी चातकिनीके समीप

शीघ्र आओ " यतो धर्मस्ततो जयः" पाण्डव किसीसे अधर्माचार नहीं करते इसलिये इनकी जय अवश्य होगी (कुछ कालोपरान्त) अरे मन ! धैर्य धर, अरे प्राणो ! रुदन मत करो, भुजाओ ! तुम बार २ क्यों फडकती हो ? नेत्रोंने तो आज बिनाही वर्षाऋतु वर्षाकी झडी लगा दी हे प्राणवल्लभ ! अब मैं क्या करूं ? मेरे नेत्रोंका जल, जलधि बन मुझको डुबोये देता है (यह कहतीहुई शिवके मन्दिरमें गई और दोनों हाथ जोडकर प्रार्थना करनेलगी) हे देवाधिपति महादेव ! हे विश्वनाथ ! हे त्रिपुरारि ! यह सब तुम्हारी लीला है. हे सतीपति ! सतीकी रक्षा करो नेत्रोंके जलसे तुम्हारे चरणकमलको सिञ्चन करतीहूं—

गान ।

कृपा करो कृपासिन्धु खलदलसंहारण ।
दासीपर कठिन भीर, थरथरात सब शरीर,
मेटहु जन जान पीर, बीर धीर धारण ॥ १ ॥
प्रीतम गये युद्धकाज, होत अशुभ शकुन आज,
सत्य कहो महाराज, है यह क्या कारण ? ॥ २ ॥
नयनवारि पद पखारि, बिनवत प्रभु बारबार,
दासीका दुख निहार, हरो कष्ट दारुण ॥ ३ ॥
जीवन मम तव अधीन दया करो जानि दीन,
आन चरण शरणलीन, दीनदुख निवारण ॥ ४ ॥

(सुनन्दा और चित्रावतीका प्रवेश)

सुनन्दा–प्रियसखी ! तुम्हारा मुख क्यौं मलीन है ? हृदयवस्त्र क्यों भींग रहा है, (मुखोत्तोलन) देखूं ! यह क्या आंखोंमें आंसू हैं ?

उत्तरा–(नेत्रोंमें जल भरकर) सुनन्दा ! आज मैं क्या कहूँ ?

कवित्त–आज आली माथेते सुबेंदी गिरे बारबार,
मुखपर मोतिनकी लडी लरकत है ।
परे पग पायलगी कील जु निकर आज,
जब तब गांठ जूडेहूकी सरकत है ॥
जान ना परत सखी जाने कहा होनहार,
सखी उरोजन आँगिया हू दरकत है ।
तनी तरकत करचूडी करकता अंग,
सारी सरकत आंख दांई फरकत है ॥ १ ॥

सुनन्दा–महारानी ! घबराओ मत धैर्य धरो ।

उत्तरा–सुनन्दा ! मुझे युद्धस्थलमें ले चल ।

सुनन्दा–क्यों !

उत्तरा–प्राणनाथके दर्शन करनेके लिये ।

सुनन्दा–क्या तुम्हैं उन्माद होगया है ?

उत्तरा–उन्मन्द होजाता तो बहुतही अच्छा था, इस अनुतापाग्निमें तो न भस्म होती, ज्ञानशून्यही रहती ।

चित्रावती–प्यारी! क्यों सोच करती हो? क्या बुद्धि गमा दी? युद्धमें गये हैं, अब जय करके आतेहोंगे।

उत्तरा–सखी! मन धैर्य नहीं धरता, तुम्हारा समझाना वृथा है, चित्रावती! सुनन्दा! अब रणभूमिमें क्या होता होगा? तुम मुझे प्रियतमके निकट शीघ्र लेचलो।

चित्रावती–होता क्या होगा कुछ भी नहीं, और जो कुछ विधाताने रचा है वह होहीगा, और जो कुछ होगा वह शत्रुओंहीको होगा, पाण्डव चिरजयी हैं सर्व विजयी हैं, तुम कुछ संशय मत करो, राजकुमारकी जय अवश्य होगी इसमें कुछ संदेह नहीं, हमने पाण्डवोंको सदा जयही करते देखा है।

उत्तरा–ना, यह विश्वास नहीं होता, मन व्याकुल हुआ जाता है।

सुनन्दा–स्नेहसे तुम्हारा चित्त व्याकुल होता है तिसपर यह प्रथम विरह उपस्थित है औरभी कष्ट देता है, शोक करकरके अपने शरीरको दुर्बल मत करो; सुभद्रादेवी शिवकी पूजा करने आती हैं, तुम्हारी यह दशा देख क्या कहैंगी?

चित्रावती–सखी! रुदन मत करो चुप हो जाओ मुखके आंसू पोंछडालो कमलदल पंकलिप्त नहीं देखा जाता आओ आंसू पोंछदूं।

उत्तरा–नहीं मैं आप पोंछ लूंगी (मुखमण्डल पोंछते हुए माँगका सिंदूर पुँछगया; तब वस्त्रमें सिंदूरका चिह्न देख) यह

क्या ? (रोते रोते) चित्रावती ! यह क्या हुवा ? हाय यह क्या हुवा जो माँगका सिंदूर पुँछगया, हाय ! हाय ! यह बडा अपशकुन हुआ हा ! विधी-(मूर्च्छित होगई) (उत्तराको गोदमें ले चित्रावतीका उपवेशन)

सुनन्दा-चित्रावती ! महारानीजीको सँभालो, वृक्षके नीचे ठण्डमें ले चलो, मैं जल लाऊँ अरी ! इस समय कोई पात्र भी नहीं मिलता । (प्रस्थान)

चित्रावती-न जानिये भगवान्की क्या इच्छा है ! ऐसी सत्यशीला निष्पाप बालिकाके भाग्यमें क्या लिखा है सौभाग्यका प्रधान लक्षण उत्तराके हाथसे विनस गया, हे महादेव त्रिशूलपाणि ! हे विश्वनाथ भूतेश्वर ! हे उमापति शशिशेखर ! उत्तराकी रक्षा कर ।

(सुनन्दाका प्रवेश)

सुनन्दा-अरी ! यह ले; मैं अंचलसे सहज सहजमें पवन करूं तू धीरे धीरे मुखपर जल छिडक (उत्तराके मुखपर जलके छींटे देती है) एक तो गर्भवती, दूसरे पृथ्वीपर पडी है ।

उत्तरा-(मूर्छाकी अवस्थामें) स्वर्गीयप्रकाश-चन्द्रलोक; दिव्ययान, नाथ ! मुझेभी अपने साथ ले चलो, मुझे त्यागकर मत जाओ, मैं तुम्हारी उत्तरा हूं ।

सुनन्दा-अरी चित्रावती ! यह अबतक चैतन्य नहीं हुई थोडा जल और छिडक ।

उत्तरा–कहां ? प्राणेश्वर ! कहाँहो ? हा ! मैं उन्मादिनी-उन्मादिनी–उन्मादिनी ! मैं देखती ही रही और आप मुझे त्यागकर चन्द्रलोक चले गये (काँपते काँपते) हे सखियो ! मुझे रणभूमिमें ले चलो, लोककाज तज गुरुजनोंका वाक्य उल्लंघन कर मैं अवश्य रणस्थलमें जाऊंगी, सखियो चलो-चलो–(सखियों सहित प्रस्थान)

(अर्घपात्र पूजाकी सामग्री लिये हुए दासीसहित सुभद्राका प्रवेश)

सुभद्रा–मेरी जीवनमूल उत्तरा कहाँ गई ! उद्यानमें नहीं आई ! दासी–ज्ञात होता है कि, लौटकर चली गई ।

सुभद्रा–उनको यहां बुलाओ–श्रीमहादेव, पार्वतीके पूजनमें उनका होना अत्यन्त आवश्यक है, थोडी देर ठहर, अभिमन्युके कल्याणार्थ धूप नैवेद्यसे हरगौरीकी पूजा करलूं; नैवेद्यके थाल मेरे दोनों हाथोंमें देदे (बैठकर दासीने उनकी आज्ञानुसार काम किया) धूप जला दो (दासीने धूप जला दी) (कुछ कालोपरान्त) अग्निमें धूप और प्रदान कर और उत्तराको बुलाला. (दासीका प्रस्थान)

सुभद्रा–(दोनों हाथ जोडकर शिव पार्वतीकी स्तुति करतीहै)

स्तुति ।

उमानाथ शशिशेखर शंकर अविनाशी ।
कठिन विपाति परी आन, दीजै मोहिं पुत्रदान ॥

दीनबन्धु दीन जान, शंभू सुखरासी ॥ १ ॥
मेरो सुत निःसहाय, व्यूह माहिं फंसो जाय,
नाथ शीघ्र लो बचाय, पांय परत दासी ॥ २ ॥
मोकों है पूरण प्रतीत, आवे सुत समरजीत,
कौरव कर अति अनति, रीति प्रीति नाशी ॥ ३ ॥
अहो नाथ ! सिद्धिसदन, मेरे एक सुतही धन,
उस बिन सब शुन्य भवन; छायरही उदासी ॥ ४ ॥
दयासिन्धु भक्तभवन, ऐसी कोइ करो जतन,
शीघ्र होय सुतदरशन, दरशनकी प्यासी ॥ ५ ॥
कभी दीख परत रात, कभी होत वज्रपात,
कभी कभी चमक जात, रणमें चपलासी ॥ ६ ॥
होत शब्द बारबार, मार मार मार मार,
जाने क्या होनहार, हे शिव ! कैलासी ॥ ७ ॥

हे अनाथनाथ ! हे भूतभावन ! ! हे देवाधिदेव महादेव !!! मेरी पूजा ग्रहण करो, मेरे सर्वस्वधन, मेरे प्राणपुत्र मेरे हृदयकी एक मात्र शक्ति, नेत्रोंकी ज्योति, अभिमन्युकी रक्षा करो; (पुष्पांजलि देनेके लिये उद्यत हुई) सहसा वज्राघात और घोर अन्धकार (सुभद्रा पृथ्वी पर गिरकर रोदन करने लगी) हाय ! महाराजने आज मेरी पूजा ग्रहण न की, हाय ! न जानिये आज क्या होगा ? मेरे भाग्यमें न जाने क्या लिखा है ? पुत्र अभिमन्यु ! अभिमन्यु ! ! हे महादेव ! हे शूल-

पाणे ! हे पशुपते ! रक्षा करो, रक्षा करो विपत्तिविदारण ! रक्षा करो; (आलोकप्रकाश) आपकी कृपासे प्रकाश हुआ अब मैं फिर पूजा करूंगी, महादेव ! सतीनाथ कृपामय ! दयासिन्धु ! भक्तिभावसे तुम्हारे चरणोंपर पुष्प चढाती हूं, मेरे अभिमन्युकी रक्षा करो, अभिमन्युके मंगलमें यदि मेरे जीवनकी आवश्यकता हो तो लो । व्योमकेश ! महेश्वर ! पुष्पांजलि प्रदान करती हूं; (फिर वज्राघात घोर अन्धकार) हा ! अभिमन्यु (सुभद्रा मूर्छित होकर गिरती है और जवनिका पतित होती है) ॥

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्रामवैश्यकृत तृतीय अंक समाप्त ॥ ३ ॥



॥ श्रीः ॥

अथ चतुर्थोऽक ।



प्रथम गर्भांक ।

स्थान पाण्डवोंके डेरे ।

(युधिष्ठिर और भीमसेन बैठे विचार कर रहे हैं.)

भीमसेन–महाराज ! क्या उपाय करें अब कौरवोंका अधर्म नहीं सहाजाता, छः जने; अकेले बालकपर अस्त्राघात कर रहे हैं क्या यही न्याययुद्ध है ? यही क्षत्रियधर्म है ? अनुतापानलसे शरीर भस्म हुआ जाता है क्या करैं ? किसी प्रकार जयद्रथको परास्त कर व्यूहमें प्रवेश नहीं करने पाये, महादेवके वरसे आज जयद्रथ अर्जुनके बिना अजय हो रहा है, दुरात्मा स्वयं उपस्थित हो द्वाररक्षा करता है, मार्ग नहीं देता–आपभी अपमानित हुए और कुछ कार्य सिद्ध न हुआ अब यह अन्याय सहा नहीं जाता ।

युधिष्ठिर–भ्राता ! क्या करैं ? कुछ विचारमें नहीं आता, किस प्रकार व्यूह भेदनकर अभिमन्युको छुटावें ? हाय ! अभिमन्यु अर्जुनका जीवनसर्वस्व है. उसका अमंगल होनेसे न जानिये क्या विपत्ति उपस्थित होगी, यह विचार करके चित्त व्याकुल होता है नहीं तो चलकर जयद्रथसे विनय करके कहो कि हमने पराभव स्वीकार किया, हम युद्ध नहीं करेंगे अपने वत्स अभिमन्युको लेकर शिबिरमें चले जायँगे ।

भीमसेन--तात! उसका हृदय पाण्डवोंकी विनयसे द्रवीभूत न होगा क्योंकि, जयद्रथ मूर्तिमान् पापरूप है।

युधिष्ठिर-(दोनों हाथ जोडकर) जगदीश्वर! रक्षा करो! तुम्हारे चरणोंकी कृपाके सिवाय और कोई उपाय नहीं है. भ्राता वृकोदर! सुभद्रा कैसे जियेगी? अर्जुन जिस समय अभिमन्युको पुकारेगा तो हम क्या उत्तर देंगे?

भीमसेन-यदि हमारी मृत्यु हो जाती तो कुछ हानि नहीं थी, जननीके प्रबोधार्थ चार भ्राता रहते, परन्तु सुभद्राका तो एकही रत्न है।

युधिष्ठिर-भीम मैं आत्मघात करता हूं; मुझे चितामें धरकर फूँकदेना. अब जीनेसे क्या प्रयोजन है? हाय! क्या विचार था क्या करलिया, कौरवोंसे परास्त होकर अर्जुनसे लज्जित होना पडेगा मनस्ताप, हाहाकार, शोक दुःख न जाने क्या क्या प्रारब्धमें लिखे हैं सो कह नहीं सक्के!

भीमसेन-धर्मराज! आपकी कातरोक्ति नहीं सुनी जाती।

युधिष्ठिर-अभ्रभेदी हिमाचलशृंगसमूह मेरे मस्तकपर गिरे, देवराज इन्द्रका वज्र मेरे ऊपर निक्षिप्त हो क्या विचारा था क्या होगया, लोग मुझे धर्मराज कहते हैं बडा धर्म कर्म किया। हा! मैं अतिभीरु, कापुरुष, अक्षात्रिय, हृदयशून्य, दारुण स्वार्थपर हूं अपने आप पराजित हो पुत्रको रणमें भेजा कालके

कराल ग्रासमें बालक अभिमन्युको देदिया, मैंही अमंगलका मूल हूं, मैं तुम्हारा ज्येष्ठतात नहीं कृतान्त हूँ, भ्राता भीम! क्या अर्जुनको संवाद भेजैं ?

भीमसेन--संवाद देनेका समय नहीं है-अर्जुन बहुत दूर है—अब प्रतिकारकी चेष्टा करो।

युधिष्ठिर—मैं कुछ नहीं विचारसक्ता, तुमहीं उपाय करो, भीम! मैं हतबुद्धि होगया, हा कृष्ण! द्वारिकानाथ! हा यदुपति! हा गोकुलेश! हा हृषीकेश! हा जनार्दन! हा पाण्डवसखा मधुसूदन! तुम इस विपत्तिकालमें कहां हो? भीमभ्राता? विधाता हमसे नितान्त विमुख है, यदि ऐसा न होता तो क्या अर्जुन कृष्ण दोनोंही हमारे समीपसे चले जाते हा! इस समय युद्धमें क्या होता होगा?

भीमसेन—अधमचारी कौरवगण! क्या करते हो ? क्या करते हो? शान्त हो, वीरताके अनुरोधसे मनुष्य मनको स्वाभाविक वृत्ति दयाके अनुरोधसे बालकका वध मत करो, अरे! क्या तुम निःसन्तान हो? क्या वात्सल्यस्नेहको नहीं जानते? क्या तुम्हारा हृदय पाषाणनिर्मित है अरे अत्याचारियो! इस किशोर सुकुमार बालक अभिमन्युको मत मारो देखो! मत मारो।

युधिष्ठिर—भइया भीम! क्या यही क्षत्रियोंका धर्म है? क्या इसीको वीरता कहते हैं?

भीमसेन–धर्मराज ! आप वीर किसे कहते हैं ? कौरवोंको? हाय ! आज वही वीर हैं, जो अन्याय युद्धसे एक बालकका प्राणनाश करनेको उद्यत हैं, उनको वीर कहना चाहिये ? नहीं नहीं ! वह वीर नहीं वीरकलंक हैं ।

युधिष्ठिर–हाय ! हृदयके अस्थिपञ्जर टूटगये, ऐसे दीर्घ श्वासोंसे प्राणदीप निर्वाण क्यों नहीं होता ? हाय ! यह बडा कलंक लगा, हा ! मैं मूर्तिमान् कलंक हो पृथ्वीपर आया हूं, भीम ! चलो एकबार कौरवोंसे विनय कर देखें ।

भीमसेन–चलो भाई, अबभी चेष्टा करनेसे अभिमन्युको पा सक्ते हैं, दीपनिवारण होनेके पूर्व उसमें तैल देना आवश्यक है ।

युधिष्ठिर–मैं; दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ प्रभृति प्रत्येक कौरवपक्षीय वीरके, प्रत्येक सेनापतिके, प्रत्येक सेनाध्यक्षके प्रत्येक अश्वारोहीके, प्रत्येक सेनानीके, प्रत्येक पदातिके प्रत्येक दूतके हाथ जोड चरण पकड, मुखमें तृण धर, अनुनय विनयसे रुदनकर कहूंगा–तुम मेरे अभिमन्युको छोड दो, हाथ जोडकर सबके आगे अभिमन्यु धनकी भिक्षाकी प्रार्थना करूंगा; यदि मेरे जीवनकी आवश्यकता हो वहभी दूँगा, यदि राज्यलिप्सा त्यागन करनी होगी तोभी प्रस्तुत हूँ फिर यदि अरण्यवासी होनेकी

आवश्यकता हो तो वहभी स्वीकार है, यदि फिर द्वादश-वर्ष अज्ञात वास करनेको कहो तो वहभी करूँगा और समस्त जीवन प्रच्छन्नभावसे व्यतीत करूँगा कौरवोंसे अपने अभिम-न्युको लावैं, चलो भाई ! नकुल सहदेवको बुलाओ आज हम चारों भ्राता कौरवोंके निकट प्राणभिक्षा करेंगे; एक जीवदान मांगेंगे; क्या उनके मनमें दया नहीं आवेगी ?

भीमसेन—चलो भाई ? भाइयोंसे भी सम्मति कर देखें

(दोनों जाते हैं और धीरे २ जवनिका पतित होतीहै)

इति श्रीअभिमन्युनाटक, प्रथमगर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

अथ द्वितीय गर्भांक ।

स्थान—युद्धस्थल व्यूहका मध्य भाग ।

(दुर्योधन, दुःशासन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, अरु शल्य बैठे परस्पर सम्मति कर रहे हैं)

दुर्योधन—जाल लगा दिया है अब मृग फँसाही चाहता है ।

शल्य—सिंहकी अपेक्षा सिंहशावकका विक्रम भयंकर है, आजके युद्धमें भी विस्मय हुए हैं ।

कर्ण—धनुष बाण छिन्न होगया ?

दुःशासन—मैंने उसके सारथीका विनाश किया और शरा-घातसे आचार्यने उसका रथ छिन्न भिन्न करदिया ।

अश्वत्थामा- पिताके साथ भयंकर युद्ध कर रहा है धनु-र्बाण शून्य रथ शून्य हुआ, तौभी असि और गदा युद्धसे लक्ष लक्ष वीरोंका प्राणसंहार कर रहा है, अर्जुननन्दन अर्जुनसे भी अधिक तेजस्वी है उसके हाथसे आज अयुत अयुत कौरव-सेना विनष्ट हुई ।

दुर्योधन—गुरुदेव स्वयं शरासन धारण कर युद्ध कर रहे हैं, शीघ्रही दुरात्माको व्यूहके मध्यभागमें लाकर हम सब एक कालमें शरसंधान करेंगे ।

कर्ण--अब आया चाहता है ।

शल्य—शीघ्रही अभिमन्युके वधका उपाय सोचो, उसके हाथसे कौरवोंका किसी प्रकार निस्तार नहीं है. भ्रातृवियोगसे मेरे मनमें क्रोधानल प्रज्वलित हो रहा है; आज जिस रीतिसे होसकेगा उस रीतिसे उसका वध करूंगा.

दुःशासन—जो उसका विनाश न हुआ तो वह हम सब महारथियोंको विनष्ट करेगा ।

कर्ण—युद्धस्थल परित्याग करना महारथियोंको उचित नहीं है, यही सोचकर मैं रणभूमिमें अबतक खडा हूँ ।

अश्वत्थामा—अभिमन्युका विक्रम आश्चर्ययुक्त है, महा-वीर चक्रकी समान चारों ओर भ्रमण कर रहा है, और उसका कवच नितान्त अभेद्य है. पिताने जो कवच धनञ्जयको

सिखाया था कदाचित् वही पार्थने अभिमन्युको बताया होगा ।

अभिमन्यु-(नेपथ्यमें) आचार्य ! क्या यही तुम्हारा वीरत्व है ? पलायन क्यों करते हो ? खडे हो-भय नहीं है, तुम मेरे पितृगुरु हो मैं तुम्हारे प्राण संहार नहीं करूंगा ।

कर्ण-यह आया, अब सबके कार्य पूर्ण होंगे ।

दुःशासन-आज इसे उचित शिक्षा दी जायगी ।

(द्रोणाचार्यका प्रवेश)

द्रोणाचार्य-गर्वित युवक वीर मदसे मत्त हो, मेरे पीछे आ रहा है शरनिक्षेप करनेमें बडा चतुर है, शरासन छिन्न हुवा रथ भग्न हुवा, तो भी युद्धमें कालकी समान ज्ञात होता है, देखो ! यह आया ।

(अभिमन्युका प्रवेश)

(सप्त रथी अभिमन्युको घेर रहे हैं और अभिमन्यु अकेला सिंहकी समान गर्ज रहा है)

अभिमन्यु-पराजित, अपमानित, सप्तरथी ! क्या तुम्हारी रणलालसा अभी पूर्ण नहीं हुई तो फिर आओ आओ आज मैं अपने पितृकुलका राज्यसिंहासन निष्कण्टक करूं ।

कर्ण-दुरात्मा ! मरनेके समय भी इतना दम्भ, यह आस्फालन क्यों ?

अभिमन्यु—अरे निर्लज्ज कर्ण ? तुझे लज्जा नहीं ? तबहीं अस्त्र धारण कर मेरे सन्मुख आया है, जा—यमालय गमन कर (असिप्रहार) (सप्तरथियोंका एक कालमें शर संधान) अधर्माचारी कौरवगण ! क्या यही तुम्हारी वीरता और यही तुम्हारा न्याय युद्ध हैं ? सप्तजन एक कालमें एक व्यक्तिपर आघात करें।

दुःशासन—जिस रीतिसे होसके उस रीतिसे शत्रुका विनाश करना उचित है, इसमें न्याय अन्याय क्या ?

अभिमन्यु—अच्छा मैं इस बातसे भी बाहर नहीं मुझको यह अन्याय भी स्वीकार है; दुराचारी पापिष्ठगण ! आज तुम्हारी वीरता देखूं; एक असिद्वारा मैं अकेला सप्तरथियोंसे संग्राम करूंगा। (खड्ग घुमा सप्तरथियोंके बाण निवारण और अवसर क्रमसे सबका आघात) (सप्तरथियोंका पलायन) धिक् भीरु, कापुरुषगण ! तुम युद्धमें आनेके योग्य नहीं तुम वीर नहीं वीरकलंक हो।

(नेपथ्यमें शब्द हुवा—जय धर्मराजकी जय)

(सप्तरथियोंका पुनः प्रवेश)

अभिमन्यु—अरे निर्लज्जो ! तुम फिर युद्धमें आये ? भागे क्यों थे तुम क्षत्री हो न वीर हो, वीरकलंक हो, युद्धमें भागना क्षत्रियोंका धर्म नहीं, वीरोंका भी धर्म नहीं, जो इस

प्रकार प्राणोंका भय करते हैं क्या वह क्षत्री हैं ? क्या वह वीर हैं कदापि नहीं । वह शृगाल और श्वानसे भी नीच हैं जाओ प्राण लेकर भाग जाओ अब कभी युद्धका नाम मत लीजो, प्राणोंकी रक्षा चाहो तो वनमें वास करो ।

दुःशासन—अभिमन्यु ! तेरी यह अन्तिम वार्त्ता ज्ञात होती है ।

अभिमन्यु—कौरव पक्षीय अधर्माचारी ! कुलांगार पापात्मा दुर्योधन और तुम पापपूर्ण सप्तरथियोंकी यही शेषवार्त्ता विदित होती है मैं तुम्हारा षड्यंत्र समझ गया; अरे अन्यायियो ! सात जन एक साथ युद्ध करके मेरे प्राण नाश करनेको उद्यत हुए हो मैं इस संग्रामसे भी पराङ्मुख नहीं मैं एकबार तुम्हारे साथ युद्ध करूंगा । मैं अर्जुननन्दन अभिमन्यु रणरंगसे कभी विरत नहीं हूंगा, मैं तुमसे कापुरुषोंकी सदृश प्राणभयसे भीत नहीं होता, मैं रण त्याग करना नहीं जानता, वीर लोग धर्मकी अपेक्षा प्राणको तुच्छ समझते हैं; जाओ; अधर्माचारी वीरकलंकगण ! अनन्त नरकमें जाओ, दूर हो कापुरुषगण ! क्या तुम योद्धा हो, जो सामान्य बालकके डरसे भाग गये; (आपही आप) देखता हूं क्या होगा परन्तु मैं जानता हूं कि; आज मेरी रक्षा नहीं, क्योंकि मैं अकेला, शत्रुदल असंख्य सप्तरथियोंके षड्यं-त्रसे आज मेरा प्राण जायगा, धर्मयुद्धसे तो सब परास्त होगये परन्तु अब दुरात्मा वीर वीरताको भंगकर, वीरधर्मको पांवोंसे

कुचल अन्याययुद्धमें प्रवृत्त हुए हैं, मुझ अकेलेके शरीरमें सात जन एकत्र हो शर प्रहार करते हैं, देह क्षत विक्षत होगया, रक्त-स्रावसे बलका क्षय होने लगा. अब कबतक अकेला संग्राम करूंगा ? परन्तु तो भी भीरुता नहीं दिखाऊंगा, साहस बांध शत्रुवध करते करते प्राण त्याग करूंगा, कहां गये दुराचारीगण ! बोध होता है कि, कुटिल लोग कुछ सम्मति कर रहे हैं ।

(सप्तरथियोंका पुनर्वार प्रवेश.)

दुःशासन—अरे अभिमन्यु ! अब तेरे सब शस्त्र भग्न होगये, केवल यह खड्ग अवशिष्ट है, यदि प्राणोंका भय है तो इसेभी त्याग कर दे ।

अभिमन्यु—जिसे प्राणोंका भय है उसे सब जान गये, अब वीरत्व प्रकाश करना वृथा है; यथेष्ट होगया, (सप्तरथियोंका अभिमन्युके हस्तको लक्ष्यकर शर वर्षण) (अभिमन्युके हाथसे खड्ग गिरपड़ा)

अभिमन्यु—मैं निरस्त्र हुवा; मुझे एक अस्त्र दो ।

दुर्योधन—शीघ्र यमलोकका मार्ग ले; कैसा अब अस्त्र ? (सबका शर निक्षेप)

अभिमन्यु—कौरवगण ! क्या यही न्याययुद्ध है ? क्या निरस्त्र पर शस्त्र चलाना ही वीरत्व है ? एक बार मुझे एक अस्त्र दे युद्धमें प्रवृत्त हो, अधर्म मत करो, मुझे एक अस्त्र भिक्षा दो

(सप्तरथियोंका शर निक्षेप) कौरवगण ! अन्याय मत करो—अन्याय मत करो, यह अन्याय सहन नहीं होता, कौरवगण ! इसमें तुम्हारा गौरव हास्यके सिवाय वृहत् न होगा. कौरवपति ! तुम मेरे आत्मीय हो; तुमसे मैं एक अस्त्र भिक्षावत् चाहता हूं—प्राणभिक्षा नहीं चाहता मुझे एक अस्त्र दो, कौरवराज ! यद्यपि मैं तुम्हारा शत्रु हूँ परन्तु तुम्हारा भ्रातृपुत्र होनेसे प्रियपात्र हूं—उस स्नेहसे मुझे एक अस्त्र दे फिर युद्धमें प्रवृत्त हो ।

दुर्योधन—तू हमारे परमशत्रु अर्जुनका पुत्र है तुझे इसी समय यमलोक भेजेंगे (शर निक्षेप)

अभिमन्यु—(आपही आप) अब चेष्टा करनी वृथा है, निश्चय यह दुरात्मा मेरा प्राणघात करेगा, (प्रगट) हा धिक् कौरवगण ! तुमको धिक्कार, तुम्हारी वीरताको धिक्कार, तुम्हारे क्षत्रियपनको धिक्कार, तुम्हारे अस्त्र धारणको धिक्कार, तुम्हारे जीवनको धिक्कार है ।

दुःशासन—अब तेरे मरनेका समय आगया यह बातकी प्रबलता है ।

अभिमन्यु—मुझे पहिलेही ज्ञात होगया है (सबका शर त्यागन)

द्रोणाचार्य—रथियो ! अब शर निवारण करो, यथेष्ट होगया ।

अभिमन्यु–हा पिता ! हा माता ! हा ज्येष्ठ तातगण ! हा कनिष्ठतातगण ! हा मातुल ! हा उत्तरे ! इस समय तुम कहां हो ? एक बार आनकर देखो ! दुष्ट कौरवोंके अन्यायसे तुम्हारा प्यारा अभिमन्यु आज विनष्ट होताहै, हा पिता ! तुम्हारे अभिमन्युको आज वीरकलंक सप्तरथी किस प्रकारसे वध कर रहे हैं, एकबार देख जाओ तुम कहां हो ? जननी ! माता–माता–अम्बे ! (नेत्रोंमें आँसू भरकर) माता ! तुम्हारे समीप और कोई नहीं । माता, माता ! मैंने आनेके समय तुम्हारी बात न मानी उसका यह फल है, माता ! मेरा मृत्युका संवाद सुनकर क्या तुम जीवित रह सक्ती हो ? अब तुम अपने अमूल्य रत्नको नहीं देखने पाओगी, हा धर्मराज ! हा ज्येष्ठतातगण ! मेरे दुर्भाग्यसे मेरा अनुसरण आप नहीं करसके, मैं निष्क्रमण उपाय नहीं जानता, इसालिये आज इन अक्षात्रिय वीरकलंकोंसे अन्याययुद्धमें निहत होताहूँ । प्राणप्रिये ! उत्तरे ! जीवनेश्वरी ! प्राणाधिके ! हा प्रिये ! तुम्हारी अवस्था स्मरण कर हृदय विदीर्ण होताहै । सुकुमारी बालिका विरह किसको कहते हैं नहीं जानती, हाय तुमको आज विरहके समुद्रमें डुबा चला । प्राणेश्वरी ! मेरे वियोगमें क्या तुम प्राण न रक्खोगी ? नहीं नहीं आत्मघात मत करना. तुम्हारे गर्भमें सन्तान है, हा मातुल विश्वकर्त्ता वासुदेव ! अपने भागिनेयकी शोचनीय अवस्था देखो ! अन्तर्यामी ! विश्वव्यापी ! सर्वशक्तिमान् ! विरोधमें आज सुभद्रानन्दनका प्राण विनष्ट हुआ, हाय ! शरीर

व्याकुल होता चला, शीघ्र शीघ्र श्वास चलने लगे, प्राणदीप शीघ्र ही समाप्त होगा, अब विलम्ब नहीं अभिमन्यु नामक पाण्डवोंका एक दास आज संसारसे चलना चाहताहै. शत्रुओंको आनन्दसागर, आत्मियोंको विषादसागरमें निमग्न कर चला । कौरवगण ! तुम्हारा यह कलंक कभी नहीं छूटेगा, सहस्र सहस्र लक्ष लक्ष वर्ष बीतने पर भी लोग तुम्हारे नामको धिक्कार दे, अभिमन्युके दुःखसे एकबार अवश्य आँसू बहावेंगे, पृथ्वीके इतिहासमें तुम बीरकलंक गिनेजाओगे । तुमने जैसा किया वैसा अच्छा किया, परन्तु अपने बीरपनको कलंक लगादिया, यह कलंकका टीका तुम्हारे जन्मभरको ही नहीं लगा, जबतक सूर्य चन्द्र रहेंगे तबतकको यह कलंकका टीका आपके मस्तकपर लगा, मेरे चलनेका समय आगया, अब विलम्ब नहीं, मृत्यु कराल मुख फैलाये चली आती है, शीघ्रही ग्रास करैगी, मृत्यु-कालमेंभी कुछ आक्रमण करदेखूं, यदि एक एक शत्रुको भी मारलूँ तो धैर्य हो (सावधान होकर उठा गदा हाथमें लिये)

द्रोपण—अभिमन्यु ! अब तेरा अन्त समय आया (गदाप्रहार) (अभिमन्युका पतन) हा माता ! हा पिता ! हा मामा ! हा उत्तरे ! (मृत्यु सहसा मेघगर्जन और अन्धकार)

अभिमन्यु—हा पिता ! हा माता ! हा मातुल ! हा उत्तरे ! हा उ–(मृत्यु) (सहसा मेघगर्जन और घोर अन्धकार)

द्रोणाचार्य—यह क्या यह क्या ? दुर्योधन ! तुम्हारे कारण आज मैं गंभीर पापसागरमें निमग्न हुआ । सब संसारके

लोग कहेंगे कि पृथ्वीपर अति जघन्यकार्य द्रोणाचार्यके द्वारा साधन हुआ।

(नेपथ्यमें शब्द हुआ, कौरवपति दुर्योधनकी जय)

(इसी समय सबके सन्मुख आकाशवाणी हुई)

दोहा—कीन्हो सबन अधर्मसों, बालकको संहार।
यही कठोर रु घोर अघ, कुरुकुल करि है क्षार॥

सब सेनाको स्वर्गसे विमान पर बैठे देवदूत उतरते हुए दिखाई दिये।

(और रणभूमिमें यह गीत गाया)

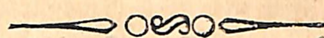
बीर उठ चल सुरराज भवन॥
तुम बिन चन्द्रलोक आँधियारो सूनो देवसदन॥ १॥
करहु प्रकाशित देवसभाको तुम अपनी किरनन॥
दिव्य यान चढ अमरधामको कीजे शीघ्र गमन॥२॥
सुरकन्या ठाडीं मग जोहत दर्शनके कारन॥
किसको वरैं आज है आली! पाण्डवकुल भूषन॥३॥
सुर किन्नर कह रहे स्वर्गमें धनि धनि अर्जुननन्दन॥
धीर बीर तुमसों नहीं जगमें त्यागो रणमें तन॥ ४॥
छूटो शाप वर्ष षोडशको करिये हरि दर्शन॥
शालिग्राम राम सुमिरन कर छूटे कोटि विघन॥ ५॥

(अभिमन्युकी ज्योतिर्मय प्राणवायुको लेकर देवदूत स्वर्गको जाते हैं और जवनिका पतित होती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्रामवैश्यकृत चतुर्थ अंक समाप्त।

॥ श्रीः ॥

अथ पञ्चमाऽङ्क।



प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान पाण्डवोंके डेरे युधिष्ठिर और भीम बैठ हैं।)

भीमसेन—यह अधर्म नहीं सहेजाते, क्रोध, क्षोभ, शोक, दुःखसे मेरा अन्तरात्मा दग्ध होगया; क्या कहूं ? दुराचारी जयद्रथ महादेवका वर पाकर मुझसे अवध्य है, नहीं तो अभी उसे इस पापका फल देता; इस गदाघातसे उसका मस्तक चूर्ण करता, हाय ! दुरात्माने कैसा विनाश किया।

युधिष्ठिर—हा वत्स अभिमन्यु ! तुमने मेरा ही कार्यसाधन करनेको व्यूह भेदन कर अगणित सैन्यमें प्रवेश किया था परन्तु हमलोग तुम्हारी रक्षा करनेको समर्थ नहीं हुए, हाय अभिमन्यु ! तुम्हारे प्रभावसे शत शत रणदुर्मद महाधनुर्धर, अस्त्रविशारद शत्रु निहत हुए, समरथी सातवार परास्त हुए, सब संसार तुम्हारे वीरत्वकी प्रशंसा करेगा, तुम वीरपुरुष हुए शत्रुओंको वध करते करते प्राण त्याग दिये, स्वर्गका द्वार तुमसेही वीरोंके लिये खुला है, परन्तु मेरे माथेपर कलंकका टीका लगगया, जिस समय लोग सुनेंगे कि, तुमने मेरी ही उत्तेजनासे युद्धमें गमन किया था. जिस समय लोग सुनेंगे तुमने मेरेही भरोसे चक्रव्यूह भेदा था, जब लोग सुनेंगे हम कापुरुषोंकी नाईं जयद्रथसे परास्त हो तुम्हारी सहायताके लिये व्यूहमें

प्रवेश नहीं करने पाये, जब लोग सुनेंगे दुर्मति दुःशासनपुत्र द्रोषणने तुम्हारा प्राण संहार किया उस समय सब लोग मुझे ही शत शत धिक्कार देंगे अनिवारित कलंकसे वा मेरेही माथे पर अंकित करेंगे, हा वत्स ! हा अभिमन्यु ! हा अभिमन्यु ! हा वीर पुत्र ! तुम्हारे निधनसे मेरा हृदय विदीर्ण होगया ।

भीमसेन—महाराज ! निधन सम्वरण करो, नेत्र जलसे क्रोधानल निवारण करना उचित नहीं है, अब दुर्मति दुर्योधन और उसके अनुगामी अपने पापोंका फल पावें, यह उपाय विचारिये ।

युधिष्ठिर—भ्राता ! यदि अनन्त काल अनन्त नयनोंसे अनन्तजल वर्षावें तो यह अनन्त शोकाग्नि न बुझेगी; हाय अर्जुन ! जिस समय अर्जुन संसप्तकोंको संग्राममें परास्त कर मुझसे अभिमन्युकी कुशल बूझेगा उस समय मैं उसको क्या उत्तर दूंगा ? जब वह पुत्रशोकसे कातर हो " अभिमन्यु ! अभिमन्यु ! " पुकार उच्चस्वरसे विलाप करेगा तब मैं उसको कैसे शान्त करूंगा ? भाई ! मैं अब वनवासी वन, बनबन घूमता फिरूंगा मुझे राज्य काजसे कुछ प्रयोजन नहीं, हा ! अनुजवधू सुभद्रा जब यह हृदयविदारक सम्वाद सुन, मणि बिन फणिकी सदृश व्याकुल हो उच्चस्वरसे रोदनध्वनि कर दिग् विदिग् पूर्ण करेगी तब मैं क्या उपाय करूंगा ? हाय ! विधाताने विराटकन्या बालिका उत्तराकी क्या गति कर दी ?

उसका जन्म निरर्थक होगया उसका विधवावेष मैं और अर्जुन किस रीतिसे देखेंगे ? भाई; भीम ! अब मेरे जीवनेका प्रयोजन नहीं, मैं संसारमें मुख दिखाने योग्य नहीं रहा, अर्जुनके सन्मुख क्या मुख दिखाऊंगा ? हे परमेश्वर ! अब इसी घडी मेरी मृत्यु हो ।

भीमसेन–महाराज ! विधाताकी गति किसीसे जानी नहीं जाती, जो कुछ उसकी इच्छा होती है वही होता है ।

युधिष्ठिर–सत्य है यह सब काम विधाताकी इच्छासे हुवा और हो रहा है, परन्तु इस घटनाका मैंही प्रधान कारणहूं, विधाताने मुझेही इस दोषका भागी किया, मेरेही कारण यह विनाश हुवा, मुझे इस कलंकके रखनेको स्थान नहीं मिलता इस कारण मेरा मरण ही अच्छा है, जो मैं जीवितभी रहा तो यह शिशुहत्या मेरे शिरपर चढी रहैगी. हत्याका कलंक अच्छा वा मरण अच्छा ? मेरी समझमें तो यही आता है कि, ऐसे कलंकोंसे मरण अच्छा और मुझको अर्जुनके जीवनमेंभी सन्देह ज्ञात होता है, मैं राज्यलोलुप (लोभी) हूँ. मैंने इस असार संसारमें आनकर राज्यार्थ एक अमूल्य जीवनको मृत्युकी भेंट करदिया. जहाँ लोभ वहाँ पाप. जहाँ पाप वहां मृत्यु, मुझे मृत्यु क्यों न आई ? जिस सुकुमार बालकको माताकी गोदसे अलग करना उचित नहीं था, उसे महादुस्तर समरमें भेज मृत्युका पाथिक करदिया ।

भीमसेन—महाराज ! शान्त हो, विलाप मत करो, तुम्हारी यह कातरोक्ति मुझसे नहीं सुनी जाती।

युधिष्ठिर—भीम ! सौ जन्म पर्यन्त विलाप करनेसे भी मनका क्षोभ नहीं जायगा क्योंकि यह पुत्रशोक महा शोक है।

भीमसेन—धर्मराज ! मैं भी जानताहूं सौ जन्मतक रोनेसे सन्ताप नहीं जायगा. परन्तु आजका दिन विलाप करनेका नहीं, सैकडों शत्रु शिरपर गाज रहे हैं; प्रथम इनसे बदला लेलो पीछे दिन रात बैठे विलाप करा करियो।

युधिष्ठिर—भीम ! अब मुझे धर्मराज मत कहो, मैं मूर्तिमान् पापसागर हूँ. मैं प्रेत, पिशाच, राक्षस हूं कोई अब मुझे युधिष्ठिर मत कहना, संसारके सब लोगो ! आज युधिष्ठिरके नामको धिक्कार दो, यह पाप नाम जिसके स्मरणपटमें चित्रित है, वह उसे धो डालो, इस नामके श्रवण, स्मरण, उच्चारण करनेसे पातक लगता है.

(अर्जुन और श्रीकृष्णका प्रवेश)

अर्जुन—केशव ! आज क्यों मेरा वाम नेत्र फडककर हृदय व्यथित होता है ? प्राण क्यों व्याकुल होते हैं ? इधर उधर क्यों अशकुन दृष्टि आते हैं ? सखे ! इसका क्या कारण है ? कुछ समझमें नहीं आता; युद्धमें सुना था द्रोणाचार्य चक्रव्यूह निर्माण पूर्वक पांडवोंसे संग्राम कर रहे हैं; पाण्डवोंका कोई अमंगल तो नहीं हुआ ?

श्रीकृष्ण-धनञ्जय ! धर्मराज निश्चयही जय करेंगे; तुम अकारण अमंगलकी शंका दूर कर दुर्भाव त्यागन करो तुम्हारा अनिष्ट अति अल्प होगा ।

अर्जुन-सखे ! आज शिबिर आनन्दशून्य, दीप्तिशून्य ज्ञात होते हैं, मैं संसप्तकोंसे संग्राम जीतकर आया; परन्तु मंगल भेरी नाद सुनाई नहीं आता, दुन्दुभी ध्वनिसे अभी पाण्डवोंका जय नहीं बोली जाती, शंख, पडताल, मृदंग, खञ्जरी प्रभृति नीरस हैं और स्तुति पाठ, बन्दी जन निःशब्द हैं, वीरगण मुझे देख विना कुशल क्षेम कहे, बिना अपना वीरकर्म वर्णन किये चले जाते हैं, माधव यह क्या कारण है ? शीघ्र कहो मन बहुत व्याकुल होता है ! क्या कुछ विनाश होनेवाला है ? मेरे समझमें नहीं आता अभिमन्यु कहां है ? और दिनकी नाईं आज वह क्यों नहीं दिखाई देता ? क्या कारण है ? शीघ्र कहो (युधिष्ठिर और भीमको देखकर) महाराज तो यहाँ हैं परन्तु और दिनकी समान प्रसन्न नहीं ज्ञात होते क्या कारण है ? मैं संसप्तकोंसे जय पायकर आया परन्तु भ्राता क्यों नहीं मिले ? चित्तभी व्याकुलसा दिखाई देता है; नेत्रोंमें जल भी भर रहा है, कुछ न कुछ कारण अवश्य है ? अभिमन्युभी इनके निकट नहीं; न जानिये वह कहां है?आज द्रोणाचार्यने चक्रव्यूह निर्माण किया था. उसको अभिमन्युके सिवाय कोई भेदन करना नहीं जानता था, सो क्या आज वही युद्धमें गया था ?

युधिष्ठिर-(आंखोंमें आंसू भरकर) भ्राता अर्जुन ! तुम मुझे वध करो; गाण्डीवमें शरसंधान कर मेरा मस्तक छेदन करो, तुम्हें ज्येष्ठ भ्राताके वध करनेसे पाप न होगा मैंने तुम्हारे अभिमन्युको-हा ! कुछ कहा नहीं जाता, देहका रक्त जलगया; अभिमन्यु हा अभिमन्यु ।

अर्जुन-महाराज क्या कहोगे, मैंने सब जान लिया. जब मैं संसप्तकोंको जीतकर चला तो मार्गमें मुझको बुरे २ शकुन दिखाई देने लगे, तब मैंने श्रीकृष्णसे कहा ।

दोहा-जाने हरि इच्छा कहा, कछु नहिं जानीजात ।
मारगमें मोहिं होत हैं, नये नये उत्पात ॥

हृदयका वाम भाग, वामनेत्र, वामभुजा बारंबार फड़कती है और हृदय बारंबार कांपता है, इन लक्षणोंसे यह विदित होता है कि, शीघ्र कोई अप्रिय बात सुनाई देगी, सूर्यके सन्मुख खडी होहोकर शृगालिनी रोती है और मुखसे आग उगलती है, हे यदुनन्दन ! मेरे सन्मुख निःशंक खडे होकर श्वान रोते हैं; उत्तम उत्तम पशु गाय आदिक तो मेरे बांये ओर होकर निकलते हैं और गर्दभ आदिक दुष्ट पशु दाहिनी ओर दिखाई देते हैं; हे पुरुष सिंह ! मेरे रथके घोडे आपही आप रोते हैं, मृत्युके दूत, काक, कपोत, उलूक, श्वान रातमें बोल रहे हैं, इनका बोलना विश्वका नाश करना चाहता है, ऐसे कुलक्षणोंको देख २ मेरा हृदय कांपता है,

सब दिशाओंमें धुन्ध छा रहा है; सूर्य चन्द्रमाके चारों ओर मण्डल बँध रहा है, भूधरों सहित भूचाल हो रहा है; बिना बादलके आकाशसे गर्जनेका शब्द सुनाई आता है, पवन धूरि लेकर आकाशको चढ रहा है, सब नभोमण्डलमें रेतसे अन्धकार छा रहा है, सब ओरसे भयानक मेघ रुधिर बरसाते हैं; स्वर्गमें सब ग्रह परस्पर लडते हैं सूर्य कान्तिहीन दृष्टि आता है, पृथ्वी भूतगणोंसे व्याकुल होकर अग्निसम संतप्त होरही है, नदी, नद, ताल और सरोवर क्षोभको प्राप्त हैं, न जानिये यह कुसमय क्या करेगा ? बछडे गायोंका दूध प्रसन्नतासे नहीं पीते, माता स्तनोंसे दूध नहीं छोडती धेनु वृक सूर्यनारायणके सन्मुख खडे होकर नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाते हैं, खरकोंमें वृषभ प्रसन्नतासे शब्द नहीं करते, मन्दिरोंमें देवताओंकी प्रतिमा रुदन कर रही हैं, पसीना आता है कम्पायमान होती हैं, ग्राम, नगर, पुर, कूप, वाटिका, आश्रमोंकी शोभा मलिन हो रही है सुखका नाम नहीं, न जानिये यह उत्पात हमको क्या दुःख देंगे, पहले मैंने श्रीकृष्णसे बहुतेरा बूझा कि, यह कैसे अशकुन हैं ? परन्तु श्रीकृष्णने मुझको धैर्यही देदेकर रक्खा, हाय ! मैं यह नहीं जाना था कि मेरे अमूल्य रत्नके जानेके लिये यह अशकुन हो रहे हैं. जो मैं ऐसा जानता तो उसी समय पवनरूप धरकर आता, हा अभिमन्यु ! हा अभि-(मूर्च्छित) ।

श्रीकृष्ण–पुत्रशोक असहनीय है जन्मभर भी यह शोक दूर न होगा, सावधान हो।

अर्जुन–(सचेत होकर) हा अभिमन्यु ! हा अभिमन्यु ! हा पुत्र ! हा हृदय सर्वस्व ! हे बेटा कहां गये ? अहोहो ! शरीर जलगया, अन्तरात्मा दग्ध होगया, हे पुत्र अभिमन्यु ! मुझे अकेला छोडकर कहाँ चला गया ? हा पुत्र ! यह विपत्ति अब नहीं सहीजाती, अभिमन्यु प्राणप्रिय अभिमन्यु ! बेटा ! मेरी तृषाके जल ! रोगके औषध ! स्वास्थ्यके पथ्य ! दुर्भावनाकी शांति विपत्तिके सहायक ! मेरे जीवन ! मेरे जीवनके जीवन ! जीवन आधार ! बेटा ! तुम कहां हो ? बेटा तुम्हारे सिवाय और मुझे कुछ आवश्यकता नहीं, तुझ विना हृदय विदीर्ण हो गया।

श्रीकृष्ण–अर्जुन ! शान्त हो शान्त हो; पृथ्वीपर कोई अमर अजर नहीं है, सबको इसी मार्ग जाना है, रोओ मत, रोओ मत।

अर्जुन–सखे ! मन शान्त नहीं होता, तुम्हारे प्रबोधक वाक्य शोकानलको बुझा नहीं सक्के; आज जाना कि, पुत्रशोक ऐसा भयंकर होता है।

श्रीकृष्ण–पुत्रशोकका भयंकर होना कौन स्वीकार नहीं करता, देवाधिदेव, भूतभावन, भगवान् शूलपाणिके हाथमें जो भीम त्रिशूल विराजता है, उसके आघातकी अपेक्षा पुत्र

शोक अत्यन्त भयंकर है फिर उस शोकसे क्या विश्वविजयी क्षत्रियकुलश्रेष्ठ धनञ्जय स्त्रियोंकी नाई रोदन कर शत्रुवधसे विमुख होगा ? क्या अर्जुन अन्य पुरुषोंकी समान दुःखभार सहन नहीं करसक्ता ?

अर्जुन–हां ! अर्जुन पुरुष, क्षत्रियसंतान, वह अवश्य परिचित कार्य करेगा, जिस नराधमने मेरे प्राणप्रिय पुत्रको निहत किया है; मैं इसी समय उसे नरकमें प्रेरण करूंगा, बताओ बताओ किस दुराचारीने यह काम किया है ? कौन नर हृदयशून्य, पिशाच मेरे बालक अभिमन्युकी मृत्युका कारण हुवा ? बतावो अभी उसके प्राण संहार करूंगा ।

भीमसेन–अर्जुन ! क्या कहूं ? कहतेहुए छाती फटती है दुराचारी जयद्रथही अभिमन्युके वधका प्रधान कारण है, यह नराधमही व्यूहका द्वार रक्षक था; जिस समय अभिमन्यु व्यूह भेदन कर उसमें प्रवेश कर गया उस समय हम लोगभी उसके अनुगामी थे, इतनेमें दुरात्मा जयद्रथ आ, मार्ग रोककर हमसे संग्राम करने लगा, पापिष्ठने महादेवके वरसे बली हो हम सबको परास्त किया; इसके उपरान्त अभिमन्युके समीप जानेको हमने बहुत विनय की परन्तु तो भी उस दुष्टने न माना; निदान सप्त-रथियोंको एकत्र युद्ध कर, हाय ! अब कुछ नहीं कहा जाता !

अर्जुन–हा पुत्र ! हा अभिमन्यु ! अन्याय समरमें तुम आज निहत हुए ! रे अधम दुराचारी कौरवगण ! क्या यही

क्षात्रिय उपयुक्त कार्य है? यही रणधर्म है? रे अधर्माचारियो! इसका फल शीघ्र पाओगे. आज किसी प्रकार तुम्हारा निस्तार नहीं; आज कुरुकुलके बालक, युवा, वृद्ध जो मिलेंगे सबका संहार करूंगा. स्वर्ग, मृत्यु, पाताल आज लोटपोट होजांयगे, पृथ्वी रसातलको चली जायगी, इस गांडीव और आग्नेय अस्त्र द्वारा कौरवकुल संहार होजायगा. आज नराधम नीच अपने पापका प्रतिफल पाकर रौरव नरकमें गमन करेंगे. सखे श्रीकृष्ण महाराज! आज मैं मध्यम पाण्डव आपके सन्मुख यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि, जो मेरे पुत्रकी मृत्युका मूलकारण है, वह कल अवश्य कालका कौर होगा, दुराचारी जयद्रथ! अब किसी प्रकार तेरा निस्तार नहीं, अब महाराज! मैं आपके चरणस्पर्श-पूर्वक स्वर्गीय देवताओंको साक्षी बना गाण्डीव धनुष ग्रहण कर इस खड्गको छू प्रतिज्ञा करताहूँ कल अवश्य मैं जयद्रथका संहार करूंगा; कलही दुराचारीका मस्तक छेदन कर उसका देह शृगाल श्वानोंको भक्षण करा मस्तक चरणविदलित करूंगा. देवलोक, गन्धर्वलोक, नागलोक, नरलोक तुम साक्षी हो कलही दुरात्माको शमनसदन प्रेरण करूंगा, यदि जयद्रथ प्राणभयसे भयभीत हो अपने वरदाता भगवान् शूलपाणिका आश्रय ग्रहण करे, और वह उसकी ओरसे युद्ध करने आवें तो भी उस दुष्ट दुराचारीका संहार करूंगा. यदि देवगण उसके सहायक हों तो भी उस दुरात्माका संहार किये विना न रहूंगा. सब संसार

उसका पक्ष ग्रहण करै तो भी उसका किसी प्रकार निस्तार न होगा, यदि वह नराधम प्राणभयसे धर्मराजके, वासुदेवके और पाण्डव-पक्षीय सेनागणके चरणोंका आश्रय ले अपने दुष्कर्मका अनुताप कर अपने अपराधकी क्षमा प्रार्थना करै तौ भी उसका विनाश करे विना न रहूँगा वह पाखंडी मेरे पुत्र अभिमन्युके वधका मूल है, जो कोई जगत्में उसका पक्ष ले अग्रसर होगा मैं तत्क्षणही उसका भी वध करूंगा, द्रोणाचार्य हों, अश्वत्थामा हों, अथवा कृपाचार्य हों, अथवा जो कोई उसका पक्षपात करैं अवश्यही उनका रुधिर मेरे तृषित बाण पान करेंगे, मैं सबके सम्मुख प्रण करके कहताहूं कि, यदि यह प्रतिज्ञा मेरी लंघन हो तो मैं क्षत्री नहीं यदि यह प्रतिज्ञा मिथ्या हो तो गाण्डीव धनुष हाथमें लेना छोडदूँगा; यदि यह प्रतिज्ञा असत्य हो तो मैं संसारको मुख नहीं दिखानेका; यदि कल मैं जयद्रथका संहार न करूं तो जन्मभरका, पुण्य निष्फल हो. मातृहत्या, पितृहत्या स्त्रीहत्या, पुत्रहत्या, गुरुहत्या, ब्रह्महत्या, अतिथिहत्या, गोहत्याका पाप, परदाराहरण, परवित्तहरण, विश्वासघातकता, कृतघ्नतासे जो पाप होता है, वह पाप मुझे प्राप्त हों यदि मैं कल जयद्रथका वध न करूं, तो फिर प्रण करके कहताहूं, यदि कल मैं जयद्रथको धराशायी न करूं तो देवनिन्दा, गुरुनिन्दा, नास्तिकता, निरीश्वरवादिताका पाप मुझे हो, यदि कल जयद्रथको न मारूं तो प्रवञ्चना, मिथ्या भाषणका पाप मुझे प्राप्त

हो. यदि कल दुरात्माको यमराजके निकट न भेजूं तो मद्यपान गणिकागमन, गर्भहत्याका पाप मुझे लगै, जगत् सुनै है, त्रिभुवन सुनै है, मैं बारम्बार पुकार पुकार कहता हूँ कि, यदि कल जयद्रथ इस संसारमें रहजाय तो अनन्त जन्म नरकमें मेरा निवास हो; देव दिनमणि सूर्यनारायण! तुम मेरे साक्षी हो आज तुम्हारे सन्मुख यह प्रतिज्ञा करी है और दूसरी यह प्रतिज्ञा है सब नर किन्नर सुनो यदि कल सूर्यके अस्त होनेसे पहिले जयद्रथका संहार न करूं तो हाथसे चिता प्रज्वलित कर उस अनलमें प्राण त्यागन करूंगा. सुर, असुर, मानव, दानव, यक्ष, रक्ष, देवर्षि, ब्रह्मर्षि कल जयद्रथकी कोई रक्षा नहीं करसक्ता. अभिमन्युका निधनकर्ता दुर्बुद्धि जयद्रथ यदि गम्भीर अपावृत पातालमें चलाजाय; अथवा धूमपुञ्जमय नभमण्डलमें छिपजाय, वा देवपुर अथवा दैत्यपुरीमें आश्रय ले तो भी उसका निस्तार नहीं; यदि प्राणभयसे जयद्रथ भीत हो वनमें जा छिपे तो मेरा क्रोधानल उसको वनसहित भस्म करदेगा. यदि जयद्रथ अतल समुद्रगर्भमें चला जाय तो वहां उसे मेरा क्रोध बडवाग्नि हो दग्ध करेगा, कल किसी प्रकार जयद्रथका निस्तार नहीं. कभी नहीं! कभी नहीं!! चाहे पृथ्वी आकाश एक हो जाय परन्तु दुराचारी जयद्रथका किसी प्रकार उबार नहीं उबार नहीं!!!

श्रीकृष्ण–साधु ! साधु ! साधु !

अर्जुन–कल वसुन्धरा जयद्रथशून्य होगी, वा अर्जुनकी चिर कालके लिये विदा है, क्षत्रियप्रतिज्ञा, वीरप्रतिज्ञा, कभी मिथ्या न होगी–न होगी–न होगी न हुई है। अब मैं जाता हूँ, जहाँ वह दुरात्मा जयद्रथ होगा उसी स्थानपर उसका विनाश करूंगा. (अर्जुनके पीछे पीछे सब वीर जाते हैं और धीरे धीरे जवनिका गिरती है.)

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्राम वैश्यकृत पंचमअंक समात ॥ ५ ॥



॥ श्रीः ॥

अथ षष्ठांक ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान रणभूमि)

(चारों ओर बडे बडे बीर, सेनापति मरे पडेहैं बीचमें अभिमन्युका देह पडा है)

(श्रीकृष्णचन्द्रका प्रवेश)

श्रीकृष्ण–जिस कारण संसारमें आये हैं वह कार्य करनाही होगा. जब हमको यदुवंशका विध्वंस करना है तब अर्जुन पुत्रके निहत होनेसे क्यों दुःखित हों ? नियमित चक्र जैसे चलता है वैसे चलो; उसके आवर्तनमें जितने जीव मरते हैं मरो, जगत्के कार्य सुधारको ही मेरा आगमन है, कार्य समाप्त करके चला जाऊँगा. चन्द्रपुत्र वर्चा अभिमन्युके रूपमें पृथ्वीपर आया था अपना कार्य पूर्ण कर वह चन्द्रलोकको चलागया; एकबार सबकी ही यह गति होनी है, मेरे चक्रमें जगत भ्रमण कर रहा है, परन्तु इस बातको निश्चय समझना; जो जिसके भाग्यमें लिखा है वह अवश्य होगा, यद्यपि मैं विधाताके नियम खण्डन करसक्ताहूं, परन्तु इससे संसारकी मर्यादा टूट जायगी और जगत नष्ट हो जायगा; जगत्का एक प्राणी कालकवलित हुआ तो क्या हानि ? यद्यपि अभिमन्युके शोकसे मेरा परमप्रिय मित्र व्याकुल है,

भगिनी सुभद्रा उच्चस्वरसे विलाप करती है, विराटपुत्री उत्तरा अनाथिनी होगई, इसका उपाय क्या ? अपना कार्य मैं करता हूँ, अपने कर्मोंका फल वह पावेंगे. इस जीवनके किञ्चित् कष्टसे उनके लिये अनन्त जीवनका सुखद्वार मुक्त होजायगा, अब प्रथम अभिमन्युकी देहका उपाय करूँ, यही जयद्रथके वधका कारण है, (अग्रसर हो) हाय हाय ! जो देह सुगन्ध उबटन लगानेसे भाराक्रान्त होता था आज उसमें अस्त्रोंके शतशत घाव लगे हैं, हा ! कुसुमसुकुमार देह आज स्थिर पडा है, धूरिधूसर हो रहा है, खंजनगंजननेत्र आज खुले दिखाई देते हैं, प्राणपक्षी आज उडगया, अब वह शतशत, अयुत अयुत, लक्षलक्ष जीवन देनेसे भी फिर नहीं आसक्ता, कालके कराल गालसे कोई बचा है ? सबका यही मार्ग है, मनुष्यका गर्व, अहंकार, अभिमान वृथा है. मनुष्य ऐश्वर्यके धनके मदमें मत्त हो कुछ विचार नहीं करता देखते ही देखते सब चले गये, दुर्योधन ! यदि यह वार्ता तुम्हारे चित्तमें एक घडीको पडी होती तो एक सामान्य पृथ्वीखण्डके कारण यह जीवनाश यज्ञ न किया जाता ।

(अर्जुनका प्रवेश)

अर्जुन-हा पुत्र ! मेरा देह भस्म हो गया, पुत्रशोकानलसे हृदय दग्ध हो गया, अब अधर्म नहीं सहा जाता, इसका प्रतिफल दुराचारियोंको देना होगा ।

श्रीकृष्ण-अर्जुन ! फिर तुम यहां क्यों आये ? यह शव तुम्हारे देखने योग्य नहीं ।

अर्जुन-पुत्रका मुख तो देखलूं, फिर इस जन्ममें कहां मिलेगा ?

श्रीकृष्ण-देखो ! नेत्रोंको दग्ध और हृदयको तापित करो ।

अर्जुन-मेरे नेत्रोंके तारे ! मेरे जीवनआधार ! मेरे प्राणवल्लभ ! क्यों प्रभातके चन्द्रमाकी नाईं मलिन हो पृथ्वीपर पडे हो ? हे कृष्णचन्द्र ! यह क्या दिखाया ? क्या दिखाया ? नेत्र भस्म होगये (अभिमन्युके शवको हृदयसे लगाकर) पुत्र अभिमन्यु ! क्या तेरे शयन करनेका यही स्थान है ? पुत्र ! उठो, एक बार तो उठो. अपने पितासे कुछ कहो. (मुख चुम्बन कर) अरे एक बार तो बोलकर इस संतापित हृदयको सुशीतल कर ।

श्रीकृष्ण-अर्जुन ! फिर तुम स्त्रियोंकी नाईं पश्चात्ताप करने लगे ।

अर्जुन-सखे ! शोक तो चिरकालतक करना होगा !

श्रीकृष्ण-शोक तो चिरकाल करना होगा, यह बात सत्य है, परन्तु प्रथम पुत्रशोकसे अधीर हो, क्रोधसे अन्ध हो, जो प्रतिज्ञा करी थी, वह स्मरण है ?

अर्जुन-हाँ महाराज ! सब स्मरण है, जो प्रतिज्ञा की है वह अवश्य पूर्ण होगी, मेरे पुत्रका निधनकर्ता जयद्रथ कल निश्चयही यमराजके भवनको गमन करैगा. किञ्चिन्मात्र भी संशय इस प्रतिज्ञामें मत समझना ।

श्रीकृष्ण-तुमको प्रतिज्ञा अनुसार सूर्यास्तसे पहिलेही जयद्रथका वध करना होगा, न होनेसे न जानिये क्या करना होगा

अर्जुन-न होनेसे अपने हाथसे चिता प्रज्वलित कर आत्मसमर्पण करूंगा !

श्रीकृष्ण-अर्जुन ! तुमने क्रोधवश हो महाकठिन प्रतिज्ञा की है, अब जयद्रथके वधका क्या उपाय है ?

अर्जुन-उपाय कैसा ? जहाँ आप हैं वहाँ उपायकी क्या आवश्यकता है ? जिसके आपसे सारथि वह जयद्रथके वधसे किसी प्रकार भीत नहीं होसक्ता; बरन् देवाधिपति देव महादेव रणभूमिमें युद्धके लिये आवें तोभी मैं युद्ध करनेको प्रस्तुत हूँ ।

श्रीकृष्ण-जो हो, परन्तु इस विषयमें मित्र, अमात्य, बन्धु सबसे परामर्श करलेना चाहिये ।

अर्जुन-जो आवश्यकता हो सो कीजिये, मुझे इन बातोंसे कुछ प्रयोजन नहीं ।

श्रीकृष्ण-अपने शिबिरमें गमन कर वहाँ सबको उपस्थित करो, पीछे मैं आता हूँ, (अर्जुनका प्रस्थान) इतने यहां

मैं अभिमन्युके देहकी रक्षा करूं (श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द अभिमन्युके शवकी रक्षाके लिये जाते हैं और परदा गिरता है।

इति श्रीअभिमन्युनाटक प्रथमगर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय गर्भांक।

स्थान राजभवन।

(धृतराष्ट्र सिंहासनपर बैठे हैं, सचिव, सेनप, शूरवीरसमीप खडे हैं)

धृतराष्ट्र–विधाता ! पूर्व जन्ममें मैंने क्या पाप किया था ? जिस कारण यह यंत्रणा भोगनी पडी है ? हाय ! नेत्रहीन होना कैसा भयंकर दुःख है ? इस संसारमें आकर यह भी न जाना कि यह जगत् कैसा है ? नयनानन्ददायक भगवान् भास्करका स्वरूप ज्योति पूर्णराशि मेरे दृष्टिगोचर न हुई; मेरे लिये तो चिरकालही अमावस्याका अन्धकार है; गान्धारी ! कौन है ? यह गान्धारीके चरणोंका शब्द नहीं ज्ञात होता ? तब क्या विदुर ? नहीं वह भी नहीं; फिर कौन ? संजय हो न हो वही है; क्या अभीसे आज युद्ध समाप्त होगया ? अब क्या समय है संध्या होगई क्या ? हो ही गई होगी, हमें तो सन्ध्या रजनी, प्रभात एकसेही हैं; कौन संजय ?

(संजयका प्रवेश)

संजय–महाराज ! प्रणाम करता हूं !

धृतराष्ट्र–आज संग्राममें क्या हुआ ?

संजय–महाराज ! आज युद्धसे पहिले, कुमार दुर्योधनने द्रोणाचार्यको अनेक धिक्कार दिये; इससे वह क्रुद्ध हैं ।

धृतराष्ट्र–क्या रण त्याग दिया ? हा मेरे मूर्ख पुत्रोंने क्या किया ?

संजय–नहीं, रण नहीं त्यागकिया. वरन् यह प्रतिज्ञा की कि आज चक्रव्यूह निर्माण कर; यातो पाण्डवोंका कोई श्रेष्ठ वीर निहत करूंगा या युधिष्ठिरको बांधकर राजा दुर्योधनके सन्मुख ले जाऊंगा !

धृतराष्ट्र–फिर क्या हुवा ?

संजय–उन्होंने यह भी कहा कि आज अर्जुन नहीं है, यह काम इस अवसरमें ठीक होगा ।

धृतराष्ट्र–युधिष्ठिर बन्दी हुवा; वा कोई उनका वीर यमलोकको सिधारा; शीघ्र कहो ?

संजय–महाराज ! आज पाण्डवोंका एक महारथी मारा गया ।

धृतराष्ट्र–कौन ? क्या भीमसेन ?

संजय–नहीं महाराज ! अर्जुननन्दन अभिमन्यु ।

धृतराष्ट्र–क्या अभिमन्यु मारागया ? वह तो महाबली था; उसे किसने मारा ?

संजय–सात महारथी एक ओर थे और वह अकेला एक ओर था. न जाने यह किसके हाथसे मारागया ?

धृतराष्ट्र–क्या उसने सातों महारथियोंके साथ युद्ध किया ?

संजय–महाराज ! अभिमन्युको सामान्य पुरुष मत समझो वह अर्जुनके समान पराक्रमी और श्रेष्ठ वीर था; उस सोलह वर्षके बालकने द्रोणाचार्यके निर्माण किये चक्रव्यूहको भेदन कर असंख्य कौरवसैन्यमें प्रवेश किया, उसके हाथसे आज अर्धकुरुसेना संहार हुई. उसके वीर्यबलसे आज कोशलराज, बृहद्बल, मगधराजनंदन श्वेतकेतु, अश्वकेतु और कुंजरकेतु, विख्यात शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, महामेघ, सुवर्चा और सूर्यभानुनामक पांच वीर धराशायी हुए महाराज ! कहते हुए हृदय विदीर्ण होता है; उस वीरश्रेष्ठने आज दुःशासनात्मज उलूक, और दुर्योधनसुत लक्ष्मणका भी संहार किया ।

धृतराष्ट्र–हा विधे ! दुर्योधनपुत्र मारागया ? दुःशासन नंदन निहत होगया ? हाय ! कैसा कष्ट है ! हृदय दग्ध होगया !

सजय–(आपही आप) अभी क्या हुआ है ? बहुत शेष हैं; इस अद्भुत नाटकके गुरु आपही हो ।

धृतराष्ट्र–संजय ! फिर कहो अभिमन्यु कैसे मारागया ?

संजय–महाराज ! क्या कहूँ ? लक्ष्मणका मृत्यु होनेके पीछे दुर्योधन ज्ञानशून्य हो सप्तरथियोंके संग मिल उस बालकसे युद्ध करने लगे ।

धृतराष्ट्र—यथेष्ट !!

संजय—यथेष्ट नहीं, तुम्हारेही, पापसे कौरवकुल विध्वंस होगा; सप्तरथी भी उस बालकका कुछ नहीं कर सके वरन उस सिंहशिशुने सिंहविक्रमसे सातबार जम्बुक सप्तरथियोंको परास्त किया ।

धृतराष्ट्र—संजय ! तुम कौरवकुलसे पालित होकर हमारे संमुख हमारी निन्दा करते हो, और सैनिकोंको जम्बुक कहते हो यह अच्छा नहीं, देख फिर ऐसा वाक्य कभी मत कहना वह सप्तरथी कौन कौन थे ।

संजय—दुर्योधन, दुःशासन शकुनि, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य ।

धृतराष्ट्र—संजय ! यह सब तुम्हारे पूज्य हैं, इनको कटु कहना उचित नहीं ।

संजय—इनको मेरा नमस्कार है परन्तु इनके कर्म देखकर यह जम्बुकसे भी नीच ज्ञात होते हैं कहीं वीर ऐसा अन्याय युद्ध करते हैं ?

धृतराष्ट्र—इसमें अन्याय क्या है "शठे शाठ्यं समाचरेत्" उन्होंने भीष्मपितामहसे कैसा अन्याय किया था, अब यदि अभिमन्यु सप्तरथियोंसे मारा गया तो क्या दोष है ?

संजय—इसमें उसमें बडा भेद है ।

धृतराष्ट्र (क्रोधित होकर) भेद क्या है ?

संजय—महाराज ! क्रुद्ध न हो, भीष्मवधके समय आपके सब वीर उपस्थित थे और किसीसे पितामहकी रक्षा न हुई परन्तु अभिमन्युके वधके समय पाण्डवोंका एक सैनिक भी नहीं था ।

धृतराष्ट्र—तो फिर हुवा क्या ? जिस प्रकार हो शत्रुका नाश करना उचित है, अभिमन्युका विनाश होनेसे अर्जुन अवश्य प्राण त्याग करैगा, और युधिष्ठिरकी प्रतिज्ञा है कि एक भाईके नष्ट होनेसे मैं अपना प्राण नहीं रखसक्का, इसलिये उसके मरनेमें कुछ सन्देह नहीं, दूत समाचार लेकर आने ही चाहता है—अब कुछ भय नहीं ।

संजय—हाँ महाराज ! कुछ भय नहीं; अब भयका क्या वृत्तान्त है ? (मनही मनमें) यह सब आशा भरोसा धराही रहैगा ।

धृतराष्ट्र—संजय ! दूत आवै चाहे मत आवै; परन्तु भारत राज्यके निष्कण्टक होनेमें कोई संशय नहीं; मुझे गान्धारीके निकट ले चल, जो मैं उन्हें यह शुभ सम्वाद सुनाऊँ ।

संजय—जो आज्ञा ! धृतराष्ट्र और संजय जाते हैं और परदा गिरता है)

इति श्रीअभिन्युनाटकका द्वितीय गर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

अथ तृतीय गर्भांक ।

स्थान कौरवोंके डेरे ।

(दुर्योधन, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और जयद्रथ बैठेहैं,)

जयद्रथ–आचार्य ! मैं गुप्तचरके मुखसे अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुन अत्यन्त भीत हुवा हूं, अब मुहूर्तमात्र समरमें रहनेकी इच्छा नहीं होती अब सिन्धुदेशका जानाही अच्छा है ।

कर्ण–इससे क्या लाभ ? यहां हमारे जीवित रहते तुमको कोई नहीं मार सकैगा ।

जयद्रथ–अंगराज यद्यपि आप यमराजसे भी रक्षा कर सक्ते हैं, परन्तु अर्जुनसे मेरी रक्षा करनी असम्भव है, उनकी हर्षध्वनि सुन मुझे भय होता है; शरीर कम्पायमान और हृदय रुदन करता है, आप तो दूर हैं, देवता, गन्धर्व, असुर और राक्षसगण एकत्रित हों तोभी अर्जुनको प्रतिज्ञाविमुख नहीं मार सक्ते मेरे विचारमें भागनाही ठीक है ।

कर्ण–सिन्धुराज ! भागना ठीक कैसे ? पाण्डवोंके दूत आपका पलायन सम्वाद सुन पाण्डवोंको समाचार देंगे फिर वह मार्गहीमें आक्रमण कर तुम्हारा प्राण नाश करैंगे ।

जयद्रथ–हाँ तो क्या मेरा समय ही आगया ?

दुर्योधन–डरो मत क्षत्रियोंके मध्यमें रहो; मैं, सखा चित्रसेन, विविंशति, शल्य, वृषसेन, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, भोजराज, काम्बोजराज, सुदक्षिण, दुःशासन प्रभृति भ्राता,

आचार्य द्रोण, गुरुपुत्र, अश्वत्थामा, आचार्य कृप, मातुल, शकुनि सब तुमको वेष्टित कर रक्षा करेंगे, फिर क्यों डरते हो?

जयद्रथ—मैं इसलिये डरता हूँ कि अर्जुनने जो सूर्यास्तसे पहिले मारनेकी प्रतिज्ञा की है।

द्रोणाचार्य—वत्स जयद्रथ! तुम्हारा और अर्जुनका गुरूपदेश समान है परन्तु उसने योगबलसे बडाई पाई है, जो हो तुमको कुछ भय नहीं संग्रामस्थलमें मैं आप तुम्हारी रक्षा करूंगा, वत्स! आज ऐसा दुर्भेद्यव्यूह निर्माण करूंगा, उसको कोई पुरुष भेदन करनेमें समर्थ न होगा, इस दुर्गम्य व्यूहका पूर्वार्द्ध पद्मकी सदृश होगा, उस पद्मव्यूहके अभ्यन्तरमें अतिगूढ सूचीव्यूह बनाया जायगा, उसके मुखमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, दुर्योधन, शल्य अवस्थान करेंगे; तुम उस सूचीव्यूहके आभ्यन्तरमें रक्षित होगे; कुरु पाण्डवोंमें मेरे और अर्जुनके सिवाय ऐसा कोई बली नहीं है, जो साठि दण्डके भीतर शकटव्यूह अतिक्रम करै. यदि वासुदेवकी सहायतासे अर्जुन दिनके मध्यमेंही शकटव्यूह भेदन कर पद्मव्यूहमें प्रवेश करे, तथापि कर्ण, भूरिश्रवा प्रभृति छः महारथियोंसे युद्ध कर सूचीव्यूह भेदन करनेमें असमर्थ होगा, यह कार्य त्रिलोकीमें कोई नहीं करसक्ता।

जयद्रथ—यदि आपने मेरी रक्षा कर ली तो दुर्योधन निश्चय अरातिशून्य होंगे क्योंकि, अर्जुनकी प्रतिज्ञा है कि,

सूर्यके अस्त होनेसे पहिले यदि सिन्धुराजको वध न करसकूं तो चिता रच अनलमें प्राण समर्पण करूँगा, अर्जुनके नष्ट होनेसे फिर मुझे किसी प्रकारका भय नहीं ।

कर्ण–सिन्धुराज ! कल अर्जुनका शेष दिन है वह अपने आप अनलमें जीवनाहुति नहीं देगा, वरन् हमारी ही शरानलसे उसका प्राण दग्ध होगा; मैं पूर्ण प्रतिज्ञा करता हूँ कल उसका विनाश कर अपनी क्रोधाग्नि निर्वाण करूंगा, (दुर्योधनसे) सखे ! अबतक तुमको आश्वासन देता रहा " कौतुक काल्हि देखिये मेरा " सिन्धुराज ! अभय होकर शयन करो कुछ चिंता नहीं ।

दुर्योधन–चलो सखे ! मैंभी विश्राम करूंगा 'आचार्य प्रणाम ' (प्रणाम कर दुर्योधन, कर्ण और शल्य गये)

कृपाचार्य–भ्राता ! यह क्या प्रतिज्ञा की ? कृष्णरक्षित अर्जुनसे किस प्रकार निस्तार होगा ? यह सत्य है कि, तुम्हारे रचेहुए दोनों व्यूह एक दिनमें भेद करना मनुष्यका साधन नहीं परन्तु भगवान् वासुदेवको असाध्य ही क्या है? यदि वह इच्छा करें तो हम लोगोंको मायाकी निद्रासे आच्छन्न कर एक दण्डमें सब कार्य सिद्ध करलें ।

द्रोणाचार्य–यह सब सत्य है, भविष्यकालमें जो होगा वह भी मैं योगबलसे जानता हूँ. " रहत नित भक्ताधीन हरि" मुझको अपने मनसे पूर्ण निश्चय है कि, भगवान् भक्तहितकारी अवश्य अपने भक्तकी प्रतिज्ञा पूरी करैंगे परन्तु मैं क्या उनका

भक्त नहीं हूँ ? जबतक युद्ध होगा; तबतक अवश्यही जयद्रथकी रक्षा करूंगा, मुझे ज्ञात होता है कि, कल सूर्यास्त होनेसे प्रथमही युद्ध समाप्त होगा, फिर पीछे सब वीरोंके सन्मुख जयद्रथ मारा जायगा, दाम्भिक कर्ण व दुर्योधन, अर्जुनका बाल बांका नहीं करसक्के. भ्राता ! मैं दिव्य दृष्टिसे देखताहूँ कि कुरुकुल निर्मूल होगा।

(एक सैनिकका प्रवेश)

सैनिक-(द्रोणाचार्यको प्रणाम करके) महाराज कहां हैं ?

द्रोणाचार्य-क्यों ?

सैनिक-आज श्रीकृष्ण एक मनुष्यके साथ युद्धक्षेत्रमें घूम रहे हैं।

द्रोणाचार्य-जाओ ! तुम अपना काम करो (सैनिक प्रणाम करके जाता है)

कृपाचार्य-चक्री कल क्या माया विस्तार करेंगे कुछ समझमें नहीं आता।

द्रोणाचार्य-कल सब विदित हो जायगा अब जाओ विश्राम करो. (कृपाचार्य गये) मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रियोंके काममें प्रवृत्त हुवा हूं, क्षत्रियोंहीके समान इसका प्रायश्चित्त करना होगा, समरानलमें प्राणाहुति देनेके सिवाय इस प्राणीका हत्याके पापसे किसी प्रकार निस्तार नहीं होसक्का. और फिर

मैं कौरवोंके पक्षमें, आयुष्काल प्रायः पूर्ण है, हारि ! इस दरिद्री ब्राह्मणको अन्तकालमें अपने चरणोंकी शरणमें स्थान दे अब चलकर शयन करैं, रात्रि बहुत गई (प्रस्थान) (शयन करनेको जाते हैं और धीरे धीरे जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक तृतीयगर्भांक समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थ गर्भांक ।

स्थान समर क्षेत्र ।

(श्रीकृष्ण और दारुक)

श्रीकृष्ण—समरक्षेत्रके जो स्थान थे तुम्हें दिखाये, इनके विशेष करके स्मरण रखना. अर्जुनने पुत्रशोकसे कातर हो कल जयद्रथके संहारकी प्रतिज्ञा की है, दुर्योधन अर्जुनकी प्रतिज्ञा निष्फल करनेके लिये यथासाध्य चेष्टा करता है; उसकी विपुलसेना, समस्त ही जयद्रथकी रक्षामें नियुक्त है; समर अजय द्रोणाचार्य इसकी रक्षा करते हैं. देवराज इन्द्रभी उसका विनाश नहीं कर सक्के, परन्तु अर्जुन सूर्यास्तसे पहिले जयद्रथका निधन करैं, मैं वही उपाय करूंगा. अर्जुनके समान मुझे दारा, पुत्र, ज्ञाति, बान्धव कोई प्रिय नहीं है, अर्जुन विना पृथ्वीपर मैं एक क्षण नहीं ठहरसक्का. दारुक ! अर्जुन मेरा प्राण है उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये कल मैं भी शस्त्र धारण करूंगा, जिनको देखकर सब संसारके लोग कहैंगे कि प्रीति हो तो

ऐसी हो अर्जुन मेरा और मैं अर्जुनका, अपने मित्रके कारण असंख्य सैन्यवेष्टित दुर्योधन कर्ण जयद्रथका संहार करूंगा दारुक ! जो अर्जुनसे द्वेष करता है मैं उसका द्वेषी हूं, जो अर्जुनके वशीभूत है मैं उसके वशीभूत हूँ. अब और क्या कहूं अर्जुन मेरा शरीरार्द्ध है ।

दारुक—पुरुषोत्तम मैं यह भली भांति जानता हूं परन्तु अब मुझे क्या आज्ञा है ?

श्रीकृष्ण—दारुक प्रभात होते ही तुम गरुडध्वज रथ सज्जित कर द्वैपायन हृदके तीर उपस्थित रहो रथमें कौमोदकी गदा, शक्ति, चक्र, धनुष्य, बाण आदि सब वस्तु उपस्थित रहैं. तुम स्वयं कवचावृत होकर बलाहक, मेघपुष्प, शैब्य, और सुग्रीव इन चारों घोडोंको रथमें जोतकर प्रस्तुत रहो जिस समय पाञ्चजन्य शंखका शब्द सुनो उसी समय मेरे निकट आओ. मैं निश्चय ही पाण्डवोंका दुःख और कौरवोंका गर्व दूर करूंगा. पाण्डवोंके अपमानित होनेसे मेरा मन अत्यंत दुःखी होता है और जयद्रथके बाण मेरे हृदयमें खटकते हैं. उनका खटका शीघ्र ही दूर करूंगा तुम निश्चय रक्खो. अर्जुन कल अवश्य सूर्यास्त होनेसे पहिले जयद्रथका प्राणान्त करेगा, और भीमसेनके द्वारा दुर्योधन, दुःशासन प्रभृति धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंका संहार होगा ।

दारुक—दीनानाथ ! दीनबंधु ! जिसके आप सहायक हैं उसे क्या भय है ?

श्रीकृष्ण—अब शिविरमें जाओ विश्राम करो (दारुकका प्रणाम करके प्रस्थान) कल सब कौरववाहिनीका फल निष्फल होगा, इसमें कुछ संदेह नहीं, इस समय योगमायाका स्मरण करूं. (ध्यानस्थ हो) कहाँ हो देवी योगमाया ! शीघ्र आओ ।

(योगमायाका प्रवेश)

योगमाया—प्रभु क्या आज्ञा है ?

श्रीकृष्ण—देवी ! विषम समस्या उपस्थित है, प्राणसखा धनंजयने प्रतिज्ञा की है कि, कल सूर्यास्त होनेसे पहिले जयद्रथका संहार करूंगा नहीं तो अग्निमें जलकर मर जाऊंगा-सो हे देवि ! तुम्हारे सिवाय उसकी गति नहीं. तुम अपने मायाजालसे सब संसारको आच्छन्न करो. सावधान रहो कि, कोई प्राणी सूर्यनारायणके दर्शन न करने पावै. अन्धकार आच्छन्न गगनमें सुदर्शन सूर्यरूपसे उदित हो. कुछ दिन रहते पश्चिम दिशामें अस्त हो जायगा तब मैं अर्जुनके लिये चिता रच यह प्रचार करूँगा कि, पाण्डव आज कृष्णसहित प्राण त्याग करेंगे. हमारी मृत्यु देखनेके लिये जयद्रथ कुरुदलसहित आवेगा. उस समय तुम अन्तर्धान होकर सूर्यका प्रकाश करदेना. अरु आज अर्जुनको लेकर कैलासमें जाना होगा, इसलिये यह वार्ता गुप्त रहनी चाहिये. कुरुक्षेत्रवासी जीव जन्तुगण उस समय सब निद्राके वशीभूत रहैं. आज जिस ओरको हम जायँगे उस दिशामें कोई जीव जाग्रत् न रहै ।

योगमाया—कृपानाथ ! ऐसाही होगा (यह कह देवे अन्तर्धान हो गई)

श्रीकृष्ण—आजके कौशलचक्रसे अवश्यही जयद्रथका नाश होगा। मेरा सुदर्शन चक्र कहां है ? (घूमते हुए सुदर्शन चक्रका आविर्भाव) सुदर्शन ! जबतक मैं कैलाससे सखाके साथ लौटकर न आऊं तबतक तुम प्राची दिशामें उदित होना, और जब मैं और अर्जुन कुरुसेनाके मध्यमें हों तब तुम पश्चिम दिशामें अस्त होना, और जब अर्जुनके बाणसे जयद्रथका मस्तक छिन्न होजाय तब उसका मस्तक पृथ्वीपर मत गिरने दीजो, बरन् सावधानसे उस शिरको लेकर स्यमन्तपञ्चक तीर्थमें जहां उसका पिता तपस्या करता है उसकी गोदमें निक्षेप कर देना, देखो ! यह अन्यथा न होने पावे आज अपने भक्तका प्रण पूर्ण कर उसे शोकसागरसे निस्तार करूंगा. अब सब लोग मेरे भक्तका पराक्रम देखना, अपने भक्तकी प्रतिज्ञाके समक्ष मेरा प्रण तुच्छ है, अब सखाके साथ कैलास पर्वतपर चलना उचित है, जहां विश्वनाथ त्रिशूलपाणि विराजमान हैं, (प्रस्थान) (श्रीकृष्ण और अर्जुन कैलासको जाते हैं और धीरे धीरे जवनिका पतित होती है)

इति श्रीअभिमन्यु नाटक शालिग्रामवैश्यकृत षष्ठांक समाप्त ॥ ६ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ सप्तम अंक।



प्रथम गर्भांक।

स्थान अर्जुनके डेरे।

(शिबिरके एक ओर गांडीव तूण है और दूसरी ओर अनेक अस्त्र शस्त्र धरे हैं ससज्ज अर्जुन)

अर्जुन—यह बात प्रसिद्ध है कि, वीर पुरुष अपने आत्मीयकी मृत्युसे कातर नहीं होते, परन्तु आज इसके विपरीत दृष्टि आता है, जगत्में ऐसा कोई नहीं है, जो अपने प्रियजनकी मृत्युसे दुःखी न हो. हाय! आज अभिमन्युके शोकसे धैर्य जाता है. वत्स! तुम कहां हो? हा अभिमन्यु! हृदय विदीर्ण होगया. पुत्र! यह तुम्हारा शोक मैं सहन नहीं कर सक्ता अरे प्राणो! किस लोभसे इस देहमें पडे हो? जाओ नहीं तो मैं, तुम्हें बलात्कार निकालूंगा. (कुछ विचारकर) श्रीकृष्णके आदेशसे शोक विसर्जन करना होगा. परन्तु शोक कैसे भूलूं. हृदय व्याकुल हो प्राणोंको दुःख देता है, अब न जानें प्राण क्यों ठहरे हैं? किस रीतिसे सुभद्राको मुख दिखाऊंगा? यह दुःख सम्वाद सुन उत्तरा क्या जीती रहैगी? हाय मन व्याकुल होता है अब यह कठिन कष्ट नहीं सहा जाता. क्षात्रियधर्मको धिक्, राज्यको धिक्, आज यदि मैं वनवासी होता तो कैसे आनन्दसे दिन कटते श्रीकृष्णसे सखा और

धर्मराजसे भ्राताके होते मैं पुत्रशोकसे दुःखी हूँ हाय ! सर्वनाश होगया, प्राण अकुलाने लगे, हृदय विदीर्ण होने लगा, हे दयामय भगवन् ! यह क्या किया ? ऐसा क्यों हुआ ? (सहसा शिबिरमें लोहित ज्योतिप्रकाश) शरीर अवसन्न क्यों होगया? अरे ! (निद्रावश हो पृथ्वीपर गिरगया)

(श्रीकृष्णका प्रवेश)

श्रीकृष्ण–सखा ! काल अति दुर्जर है, यह सब पदार्थों को अवश्य भावी विषयमें नियोजित करता है; शोकसे कार्यका नाश होताहै, शोक चेष्टाहीन व्यक्तिका परम शत्रु है, शोककरे वीर शत्रुगणको आनन्दित और मित्रोंको विषम विपद्में निमग्न करता है; जो प्रतिज्ञाकी रक्षा कर वही यथार्थ वीर है ॥

अर्जुन–(अनिद्राजनित स्वरसे) केशव ! तुम्हारी सहायता बिना मैं कुछ नहीं करसक्ता, बिना तुम्हारी सहायताके जड जीव भी अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा नहीं कर सक्ता, आज आपकी मायाहीके प्रभावसे मैं निद्राके वश हूं ।

श्रीकृष्ण–सखा ! इस कारण तुम दुःखित मत होवो ! आज मैं जिस ओरको जाऊंगा उस ओरके सब जीवमात्र गाढनिद्रामें निमग्न होजायँगे, अब जो कहूं उसको ध्यान धरकर सुनो,देवाधिदेव महादेवने जिस अस्त्रसे दैत्यकुल निर्मूल किया था उसी पाशुपत अस्त्रसे जयद्रथका मरण होगा, यदि तुम वह महाअस्त्र भूल गये हो तो नीलकण्ठ भगवान् भूतनाथ भूतेश्वरका ध्यान धरो ।

अर्जुन-(विश्वनाथ त्रिशूलपाणि शंकर भगवान्‌का ध्यान करके) हे शंकर ! हे देवाधिदेव रक्षा करो ! रक्षा करो ! !

श्रीकृष्ण-(अजुनके पीछे बैठकर और उसके दक्षिण स्कन्धमें अपनी दक्षिण तर्जनी स्पर्शपूर्वक) सखे ! देवाराध्य कैलास शिखरपर चलो, जहां भगवान् शूलपाणि विराजमान हैं, पाशुपत अस्त्रसहित उनका आशीर्वाद ग्रहण करें (सहसा आसनसहित कृष्णार्जुन आकाशमार्ग होकर जाते हैं और पट परिवर्तन होता है अर्थात् परदा बदलता है) ।

इति श्रीअभिमन्युनाटक प्रथमगर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

अथ द्वितीय गर्भाक ।

स्थान शिबिर श्रेणी ।

(दो सार्जित सैनिकोंका प्रवेश)

प्रथम सैनिक-समरकेतु ! आज सन्ध्यासमय उस दलके वीर कैसा आमोद प्रमोद कर रहे थे. बाजोंकी ध्वनिसे कान फटे जाते थे, मानो उन लोगोंने कोई बडा युद्ध जीत लिया है, अब अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुन चुपचाप हैं; जैसे सांप सूंघ गया हो.

द्वितीय सैनिक-सत्य है, परन्तु आज कलका दिन दोनों पक्षवालोंको बडा भयंकर हुवा; आज क्या उनको युद्धके जीतनेकी आशा थी ? यदि आज अर्जुन होते तो उनका किसी प्रकार भी निस्तार नहीं था भाता ! मध्यम पाण्डवोंके रहते हमारा साहस दुगुना बढ जाता है, भीमसेन एक एक गदाके

आघातसे दश दश मनुष्योंको यमालय प्रेरण करते हैं, तुमने यह भी सुना युवराजके हाथसे उनके कौन २ वीर मारेगये ?

प्रथम सैनिक–ना भाई ! मुझे कुछ सुधि नहीं; कल पाँवमें बाणके लगनेसे ज्वर हो आया था, इसलिये धर्मराजके आदेशसे आज विश्राम किया, इस समय ज्वर कुछ घटा है सो इधर उधर टहल रहा हूँ। यदि मैं युवराजके साथ युद्धमें रहता तो उनके संग ही अपना प्राण देदेता।

द्वितीय सैनिक–वहां रहने पाते तो सब ही प्राण देदेते वयं वृकोदर भी व्यूहमें नहीं प्रवेश करने पाये, वहां तुम क्या करते ? अरे ओ जयद्रथ !

प्रथम सैनिक–कल माताका दूध स्मरण होगा, कल बालकके मारनेकी वीरता होगी, कल अन्यायका फल भले प्रकार मिलेगा, कल दुष्टका शिर छिन्न भिन्न हो भूतलमें लोटेगा (सहसा लोहित ज्योति प्रकाश) अरे ! क्या बिजली चमकी ? भाई मुझे तो निद्रा आती है, कैसी बिजली ? मुझे अपने तनुकी भी सुधि नहीं. तुम सावधान रहना (निद्रा)

द्वितीय सैनिक–(निद्रा) (आकाशमें दक्षिण दिशाकी ओर मेघोंके ऊपर योगासन आरूढ अर्जुन कृष्णका प्रवेश और बाईं ओर प्रस्थान)

(पटपरिवर्तन होता है. अर्थात् परदा बदलता है)

इति श्रीअभिमन्यु नाटक द्वितीयगर्भांक समाप्त ॥ २ ॥

अथ तृतीय गर्भांक ।

स्थान समर क्षेत्र ।

(जहां तहां सनाके बीर मरे पडे हैं, हाथी घोडे इत्यादि आभाहीन नक्षत्रोंके समान दृश्यमान हैं इधर उधर शृगाल, श्वान गिद्ध काक महाभयानक शब्द कर करके भ्रमण कर रहे हैं एक ज्योतिर्मय कबंधका रंगभूमिकी वाम औरसे उन्नतकी नाईं प्रवेश और रणभूमिके मध्यमें आनकर गिरना और आकाशसे एक बडे भारी तारेका टूटना)

(एक राक्षस और राक्षसीका प्रवेश)

राक्षसी-(यह गीत गाती आई)

गान ।

हम सब जगकी रानी हैं रानी हैं हम रानी हैं ॥
भूतनाथ हैं गुरू हमारे पार्वती गुरआनी हैं ॥ १ ॥
चौंसठ योगिनि बावन भैरव जो सबके अगवानी हैं ॥
लिये खोपडी नाचैं रणमें गावैं वाकी बानी हैं ॥ २ ॥
सावन भादोंकीसी नदियां चारों दिशि उतरानी हैं ॥
बासों गहिरे नदी न बेडे खून है या यह पानी हैं ॥ ३ ॥
लोथोंपर लोथें लोटे हैं मरे करोडों प्रानी हैं ॥
बरसोंकी भूखी भटकानी हम सब आज अघानीहैं ४ ॥

मैं अब रुधिर नहीं पीती मेरा मन भरगया, मज्जा भक्षणसे मेरा चित्त अत्यंत प्रसन्न होता है।

रुधिरप्रिय-अरी ! तू कहां है ? मैं तुझे कलसे ढूँढता फिरूँ हूँ ।

राक्षसी-क्यों ?

रुधिरप्रिय-कहीं जाना मत; कल जयद्रथ मारा जायगा ।

राक्षसी-अहा हा ! उसका रुधिर तो बडे भाग्यसे मिलेगा सहसा ज्योति प्रकाश) अरे ! रेरे ! ! गिरी (निद्रित होकर राक्षस और राक्षसी भूमिपर गिरते हैं बाईं ओरसे पूर्ववत् कृष्णार्जुनका प्रवेश और दक्षिण दिशाको प्रस्थान । पट पीरवर्तन होता है अर्थात् परदा बव्लता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक तृतीयगर्भांक समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थ गर्भांक ।

(स्थान कानन)

योगमायाका प्रवेश ।

योगमाया--आज मैं श्रीनारायणी आज्ञासे आगे २ आइ हूं आज दीनानाथ कैलासको जायँगे; जितने पशुपक्षी विश्वमें हैं सब निद्रासे मग्न हों विधाताकी सृष्टिमें काइ जागृत न रहे ।

गान ।

जीवगण सोय रहो सुख साज ।
एकहु जीव विश्व नगरीमें जागत रहो न आज ॥ १॥
हरि अपने जनके हित नितप्रति करत करोरन काज॥
झटपट पट तन धरकर राखी द्रुपदसुताकी लाज॥२॥

तुरत ग्राहते जाय छुडायो अपनो जन गजराज ॥
भीष्म सुताके काज अकेले गयें कुंदनपुर भाज ॥ ३ ॥
जात आज कैलास शंभु ढिग श्रीकृष्ण महाराज ॥
शालिग्राम भक्त मनरंजन भयभंजन ब्रजराज ॥ ४ ॥

(श्रीकृष्णार्जुन उत्तर दिशाकी ओरको जाते हैं; पट परिवर्तन होताहै अर्थात् परदा गिरता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक चतुर्थ गर्भांक समाप्त ॥ ४ ॥

पञ्चम गर्भांक ।

स्थान गंगाद्वार ।

(गंगाजी हिमालय पर्वतकी बडी बडी शिलाओंपर गिरकर सोताकर बह रही हैं और ऋषिलोग गंगाजीमें खडे स्नान ध्यान कर रहे हैं)

प्रथम ऋषि–भाई ! अब सब मिलकर हरिभजन करो; हमको भलीभाँति निश्चय है कि, हमारी सारी मनोकामना पूर्ण कर अभयदान देंगे ।

सब ऋषि–(आनन्द होकर यह श्लोक पढने लगे)

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे,
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ।
गोविन्द गोविन्द रथांगपाणे,
गोविन्द गोविन्द नमो नमस्ते ॥

(फिर सबने मिलकर यह भजन गाया)

मूरख छाँडि वृथा अभिमान ।
औसर बीत चलो है तेरो, दो दिनका माहिमान ॥
भूप अनेक भये पृथ्वीपर, रूप तेज बलवान ॥
कौन बचो या काल व्यालसे, मिट गयो नाम निशान॥
धवल धाम धन गज रथ सेना, नारी चन्द्र समान ॥
अन्त समय सबहीको तजकर, जाय बसे शमशान ॥
तज सत्संग फिरत विषयनमें, जा विधि मर्कट श्वान॥
क्षण भर बैठि न सुमिरन कीनो, जासों होय कल्यान॥

(सहसा लोहित ज्योति प्रकाश)

(सब ऋषि लोग आश्चर्यमय होकर) यह क्या ?

एक ऋषि–यह योगमाया का प्रकाश है ।

सब ऋषि–नमस्कार, नमस्कार ! अहोभाग्य जो आपका दर्शन हुवा ।

योगमाया– मुनिगण ! आज श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द दीनबन्धु दीनानाथ पाण्डवोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये कैलास पर्वतपर अदृश्यरूपसे गमन करैंगे, उनकी आज्ञासे मेरे द्वारा सब संसारी जीव निद्रित हैं, अब संसारमें कोई प्राणी जागृत नहीं ।

प्रथम ऋषि–कृष्णकी कृपासे निद्रा मेरे अधीन है, नरनारायणके दर्शन करनेको हम वहां आये हैं परन्तु कृष्णकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करसक्के, इस कारण निद्रा हमैं किञ्चित् आकर्षण कर त्यागन करै (अल्पनिद्रा आकर्षण) (फिर लोहित ज्यो-

तिप्रकाश) आओ सब मिलकर कृष्ण भगवान्‌की स्तुति करैं । सब ऋषि " श्लोक-कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय ॥ वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिविनाशन ॥ १ ॥ विश्वात्मन्विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय ॥ प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर ॥ २ ॥ आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नताःस्मते ॥ वरेण्य वरदानन्द ह्यगतीनां गतिर्भव ॥ ३ ॥ पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्यादगोचर ॥ पाहित्वं कृपया देवशरणागतवत्सल ॥ ४ ॥

(पूर्वरूपसे कृष्णजीका प्रवेश)

श्रीकृष्ण—मुनिगण ! यहां मैं विलम्ब नहीं करसक्ता क्योंकि अतिविषम कार्य उपस्थित है अब बिदा दो, फिर दर्शन होगा (योगमायासे) योगमाया ! अब आगे जीवोंके निद्रित करनेका कुछ प्रयोजन नहीं यहांसे पाण्डवोंके शिबिरतक जितने जीव हैं सब निद्रामें ऐसेही मग्न रहैं जबतक हम कैलास पर्वतसे फिरकर न आवें, (योगमाया अन्तर्धान हुई) (अर्जुनसे) चलो सखा !

अर्जुन—(जागृत हो) सखा हम किस देशमें आगये ? यह तो उत्तराखण्डके धवल पर्वत हैं, (यह कहते हुए कृष्णार्जुन आगेको जाते हैं, पट परिवर्तन होता है अर्थात् परदा बदलता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक पञ्चमगर्भांक समाप्त ॥ ५ ॥

षष्ठ गर्भांक ।

(स्थान तुषार धवल पर्वतमाला)

अर्जुन—देखो महाराज ! कैसी कैसी ऊंची पर्वतकी चोटियें चली गई हैं, वह कुबेरकी क्रीडाभूमि शोभायमान हो रही है, प्रफुल्लित कमल चारों ओर खिल खिलकर अपनी सुगन्धिसे दश दिशा सुगन्धित कर रहे हैं, पक्षियोंका मधुर शब्द मनको मोहित कर लेता है, किन्नरोंके गानेका शब्द कानोंमें अमृतकेसी झडी लगा रहा है, मन्द मन्द पवन चित्तको प्रफुल्लित कर रहा है, हाय ! इस दुःखित मनसे यह अद्भुत शोभा कैसे वर्णन करूं ?

श्रीकृष्ण—अब विलम्ब करनेका समय नहीं है, सुधि है कि नहीं ? कल सूर्यास्तसे पहिले जयद्रथका संहार करना है (दोनों जाते हैं और पर्वतमेंसे वन, पर्वतकी शोभाके वर्णनका एक गीत सुनाई आता है)

बसन्त राजा आवे, मनहरन बसन्त राजा आवे ।
आवे आवे मन हर्षावे, ललचावे मन भावे ॥ टेक ॥
तरुण तरुण फल शोभित करके; ललितलता लटकावे ।
कुंज भवनके हिंडोले पर, सखि ! ऋतुराज बुलावे ॥
कनक दण्ड केशर जल लेकर, कंचुकि काम बजावे ।
कमलपत्रको छत्रधार कर, नृपति समाज रिझावे ॥ २ ॥
नव पल्लव सज बसन्त शोभा, मनकलिकान नचावे ।
कोकिल कानन गाय मधुरपद, मधुकर स्वर प्रगटावे ॥ ३ ॥

परिमलकीर्ति माधवी श्रीकी, दक्षिण वायु बढावै ।
मिश्ररागको वेग बढावत, कीचक वंशी बजावै ॥ ४ ॥

(पटपरिवर्तन अर्थात् परदा बदलता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक षष्ठगर्भांक समाप्त ॥ ६ ॥

सप्तम गर्भांक ।

स्थान कुबेरका क्रीडाकानन ।

(सरोवरमें अप्सराएँ जलविहार कर रही हैं)

(गीत चन्द्रमाकी शोभामें)

सखी री नभमें चन्द्र विराजो ।
हँसत कुमोदिनि फूली जलमें, कमल लाजसों लाजो ॥ १ ॥
बिरहिनिताप बढावनहारो, बिरहसाज इन साजो ।
डर लागत इहि देख देखकर, चलो शीघ्र सब भाजो ॥ २ ॥
मेघारूढ कृष्ण अब आवत, मनहु श्याम घन गाजो ।
छूछू इनके चरणकमलको, इनके निकट विराजो ॥ ३ ॥
कृष्णचन्द्र पृथ्वीपर राजत, नभमें चन्द्र जु राजो ।
दोनों शीतल करत हृदयको, पूरण शरद निशा जो ॥ ४ ॥
जानत यह गोपिनके दुखको, गगन माहिं बिभ्राजो ।
जन्म सफल करों परे चरणमें, पापपहार बिलाजो ॥ ५ ॥

(कृष्णार्जुन जाते हैं और पट परिवर्तन होता है
अर्थात परदा बदलता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्रामवैश्यकृत सप्तमगर्भांक समाप्त ॥ ७ ॥

अष्टम गर्भांक ।

स्थान पर्वतमाला ।

(पर्वतके शिखरपर पुष्पदंत और माल्यवान शिवस्तुति कर रहे हैं)

जय जय जय जय गिरीश, गिरिजापति शंकर
लीने करमें पिनाक, मले तनु मसानखाक,
सेवत सुर सहितनाक, पुष्पमाल लेकर ॥ १ ॥
खोलो जब तृतीय नैन, भस्म भयो तुरत मैन,
तुमसम कोइ और है न, जगमें योगीश्वर ॥ २ ॥
जो जगमें जन अनाथ, तिनके शिर धरत हाथ,
बारबार नाय माथ, मांगतहूँ यह वर ॥ ३ ॥
चरणनमें रहे ध्यान, मन न कहूँ जाय आन,
हैं हर कृपानिधान, विषधर शशिशेखर ॥ ४ ॥

(मेघारूढ श्रीकृष्णार्जुनका प्रवेश)

(आकाशमें शिवस्तोत्र सुनाई आता है)

॥ श्लोक ॥

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गांगवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि ॥ १ ॥

महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं
विभुं विश्वनाथं विभूत्यंगभूषं
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं
सदानंदमीडे प्रभुं पञ्चवक्रम् ॥ २ ॥
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं
गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषितांगं
भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्रम् ॥ ३ ॥
शिवाकांत शम्भो शशाङ्कार्द्धमौले
महेशान शूलिञ्जटाजूटधारिन् ।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप
प्रसीदप्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥ ४ ॥
परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं
निरीहं निराकारमोंकारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥ ५ ॥
न भूमिर्नचापो न वह्निर्न वायु-
र्नचाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ॥ ६ ॥

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां
शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमःपारमाद्यंतहीनं
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥ ७ ॥

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वरूप
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते ।
नमस्ते नमस्ते तपो योगगम्य
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ॥ ८ ॥

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ
महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र ।
शिवाकान्त शान्त स्मरारेन्धकारे
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥ ९ ॥

नमो ह्यादिदेव प्रभो विश्वनाथ
नमो भावगम्याय वै शंकराय ।
नमः कालरूपिन्नमः कालनाश
नमोनन्तरूपिन्नमामो नमामः ॥ १० ॥

(पूर्ववत् श्रीकृष्णार्जुन आगेको जाते हैं, पट परिवर्तन अर्थात् परदा बदलता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक अष्टमगर्भांक समाप्त ॥ ८ ॥

नवम गर्भांक ।

स्थान अन्धकार ।

आकाशमें तारे खिल रहे हैं, नीचे सुवर्णनिर्मित यक्षनगरी है, अलकापुरीके स्वर्णशिखर तारोंकी हीन ज्योतिसे स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होते हैं)

श्रीकृष्ण–अनन्त आकाशमें अनन्त तारे विचरण कर रहे हैं, इसी आकाशमें हम तुम अनन्त सोचसागरमें मग्न हैं, अब किञ्चित् विलम्बमें भवानीपतिके दर्शन कर सुखी होंगे ।

अर्जुन–महाराज ! यह तो कुछ नगरसा दृष्टि आता है ।

श्रीकृष्ण–अहा हा ! तुम नहीं जानते ! इसीका नाम अलकापुरी है, हम आकाशपथमें बहुत ऊँचे चल रहे हैं; इसी कारण यह पुरी स्पष्ट नहीं दिखाई देती, यह देखो अब अलकापुरी अदृश्य हुई (अलकापुरीका अदृश्य होना) अर्जुन ! अब अलकापुरी हमसे बहुत दूर रहगई ।

अर्जुन–यह योगासनके सिंहासनमेंसे कैसी ज्योति निकल रही है ?

श्रीकृष्ण–अभी दूर और आगेको चलो तो सब प्रकट होजायगा. यह लो, अब देखो ! ज्योतिके प्रकाशसे सब तारे अदृश्य होगये. योगासन आरूढ योगिवर भगवान् शूलपाणि महादेवका प्रकाश है. पर्वतके पश्चात् भागमें नन्दीगण आदि और इधर उधर वीरभद्रादि घूम रहे हैं ।

अर्जुन—क्या महाराज ! प्रातःकाल होगया ? जो तारे द्युतिहीन और चन्द्रमा मलीन होगया ?

श्रीकृष्ण—सखा ! अभी उषःकाल नहीं हुआ, जैसे सूर्यके प्रकाशसे तारे दृष्टि नहीं आते; इसी प्रकार अनन्त तेजधारी भगवान् भवानीपतिके आविर्भावसे तारोंकी ज्योति मलीन होगई है; शिवके तेजके सन्मुख कहीं सूर्यका प्रकाश प्रकाश करसक्ता है ? चलो आगे चलो (कृष्ण अर्जुनका प्रस्थान)

(नन्दी शिवगण गान करते हैं)

(पर्वतप्रस्थमें कृष्णअर्जुनका प्रवेश)

श्रीकृष्ण—चलो अब पर्वतके शिखरपर चढ़ें; (कृष्णार्जुनका नन्दीके सन्मुख आगमन) नन्दी ! महादेवजीसे विनयपूर्वक कहना कि, कृष्णार्जुन आपके दर्शनकी लालसासे आये हैं ।

नन्दी—दयामय ! आप यह क्या आज्ञा करते हैं ? क्या आप और वह पृथक् पृथक् हैं ? किसके कारण मैं किसको आदेश करूं ? आप अपनी माया आपही जानैं; दूसरा कोई क्या समझ सक्ता है ? महाराज ! मुझ दासके पीछे गमन कीजिये ।

(श्रीकृष्ण, अर्जुन और नन्दीका शिखरपरपर आरोहण)

श्रीकृष्ण—(विनय करके) प्रणाम !

महादेव—प्रणाम ! प्रणाम ! अहोभाग्य ! जो आज नर-नारायणकी युगलमूर्तिका दर्शन हुवा ।

श्रीकृष्ण—योगिराज ! आज मैं आपका दर्शन करके कृतार्थ हुवा; महेश्वर ! आज महाविपत्तिसे ग्रसित हो आपकी शरण ली है ।

महादेव—(चकित होकर) कैसी विपत्ति ?

श्रीकृष्ण—पिनाकधारी ! मेरे सखा अर्जुनने जयद्रथके संहार करनेकी प्रतिज्ञा की है, परन्तु पाशुपतके अतिरिक्त और किसी अस्त्रसे जयद्रथका वध नहीं होसक्ता इसलिये यह प्रार्थना है कि, वह अस्त्र मेरे अर्जुनके प्रयोगसंहारसहित प्रदान कीजिये ॥

अर्जुन—(दण्डवत् प्रणाम करके)

स्तुति ।

प्रभुं प्राणनाथं विभुं विश्वनाथं जगन्नाथनाथं सदानन्दभाजाम् । भवद्भव्यभूतेश्वरं भूतनाथं शिवं शंकरं शंभुमीशानमीडे ॥ गले रुण्डमालं तनौ सर्पजालं महाकालकालं गणेशाधिपालम् । जटाजूटगंगोत्तरंगैर्विशालं शिवं शंकरं शम्भुमीशानमीडे ॥ मुदामाकरं मंडनं मण्डयन्तं महामंडलं भस्मभूषाधरं तम् । अनादिं ह्यपारं महामोहमारं शिवं शंकरं शम्भुमीशानमीडे ॥ तटाधो-

निवास महाट्टाट्टहासं महापापनाशं सदा सुप्रकाशम् । गिरीशं गणेशं सुरेशं महेशं शिवं शंकरं शंभुमीशान-मीडे ॥ गिरीन्द्रात्मजासंगृहीतार्धदेहं गिरौ संस्थितं सर्वदासन्नगेहम् । परब्रह्मब्रह्मादिभिर्वन्द्यमानं शिवं शंकरं शंभुमीशानमीडे ॥ कपालं त्रिशूलं कराभ्यां दधानं पदांभोजनम्राय कामं ददानम् । बलीवर्दयानं सुराणां प्रधानं शिवं शंकरं शंभुमीशानमीडे ॥ शरच्चन्द्रगात्रं गणानंदपात्रं त्रिनेत्रं पवित्रं धनेशस्य मित्रम् । अपर्णाकलत्रं चरित्रं विचित्रैः शिवं शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ हरं सर्पहारं चिताभूविहारं भवं वेदसारं सदा निर्विकारम् । श्मशाने वसन्तं मनोजं दहंतं शिवं शंकरं शम्भुमीशानमीडे ॥

महादेव—माधव ! मैंने प्रथमही तुम्हारे सखासे कहदिया था कि, जिस समय तुमको महाकष्ट होगा उस समय तुमको प्रयोग संहार मंत्रसहित पाशुपत अस्त्रका स्मरण आवेगा; मैं तो वहीं भेज देता, आपने क्यों वृथा इतनी दूर आकर कष्ट सहा, वत्स नन्दी ! धनञ्जयके संग जाकर अमृतह्रदका दर्शन कराओ, हे नरोत्तम ! तुमभी नन्दीके संग जाकर ह्रदसे हमारा धनु शर लेआओ (नन्दी और अर्जुन गये) पुरुषोत्तम ! युद्धका क्या वृत्तान्त है ? धर्मराजके राज्यका कब स्थापन होगा ? तुम कब मानवलीला सम्पूर्ण करके गोलोकमें आनकर दर्शन दोगे ? मैं कब तुम्हारे सम्मुख हरि हरि कहकर नृत्य करूंगा ?

श्रीकृष्ण–नाथ ! आप अजानकी नाईं क्या जिज्ञासा करते हैं; अन्तर्यामी ! तुम समस्त जगत्के संहारकर्ता हो, जो वीर कुरुक्षेत्रमें निहत हुए वह क्या तुमको आविदित हैं ? कुरुक्षेत्रका युद्ध समाप्त होनेपर युधिष्ठिरको हस्तिनापुरका राज्य दे निजसृष्टिसे यदुवंशका विध्वंस कर मनुजशरीर छोड आपके चरणारविन्दका दर्शन करूंगा (नन्दीके पीछे धनुष बाण लिये अर्जुनका प्रवेश और धनुष रखकर महादेवजीको प्रणाम सहसा शिवका दक्षिण पार्श्व भेदकर एक ब्रह्मचारीका आविर्भाव)

ब्रह्मचारी–(धनुष बाण हाथमें लिये ब्रह्मचारी पैतरे बदलता हुवा आया)

श्रीकृष्ण–अर्जुन ! मनःसंयोगपूर्वक मौर्वी आकर्षण धनुष धारण पादस्थान प्रभृति अवलोकन कर शिवजीके मुखसे निकला हुवा मंत्र ग्रहण करो (अर्जुनका ब्रह्मचारीकी ओर देखना और मंत्र ग्रहण करना)

ब्रह्मचारी–धनञ्जय ! ले धनुष, (यह कह धनुष बाण रख अन्तर्धान हुवा)

महादेव–(ब्रह्मचारीका छोडा हुवा बाण दाहिना हाथ पसारतेही आकाशसे हाथमें गिरा) जनार्दन ! मैंने अपना पिनाक और पाशुपत अर्जुनको प्रदान किया, (धनुष बाण समर्पण) कल जयद्रथके संहार समय प्रयोगसंहार मंत्रसहित यह अस्त्र

तुमको स्मरण होगा, लोकक्षय कर अपरिमित तेज सम्पन्न यह अस्त्र जिस समय प्रयोग करना चाहिये यह तुम स्वयं जानते हो कह तो नहीं सक्ते परन्तु अब ऐसे समयमें कहनाही उचित है, जाओ अब सुखपूर्वक शत्रु नाश करो (प्रणामपूर्वक कृष्णार्जुनका प्रस्थान होता है और जवनिका धीरे धीरे पतित होतीहै)

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्राम वैश्यकृत नवमगर्भांक और सप्तम अंक समाप्त ॥ ७ ॥



॥ श्रीः ॥

अथ अष्टम अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

स्थान शिविर.

(जयद्रथ शय्यापर पडा है)

जयद्रथ—मेरा अन्तिम काल निकट आगया, क्या हुवा? हा! अब अर्जुनकी प्रतिज्ञासे मेरी कौन रक्षा करेगा? मैं यहां नहीं रहूंगा अब सब निद्रित हैं यह अवसर भागनेके लिये बहुत अच्छा है. हिमाचलपर्वतकी कन्दरामें छिपनेसे किसीको ज्ञात नहीं होगा. यदि कल प्राण बच गये तो फिर कुछ भय नहीं. परसों तो आपही अर्जुन अग्निकुण्डमें प्रवेश करके भस्म हो जायगा, फिर किसका भय रहेगा? अब चलूं (उठकर) हाय! क्या? सब शिविर अर्जुनमय है किस ओर जाऊं? हे अर्जुन! मेरा संहार मत करो; मैंने तुम्हारे अभिमन्युको वध नहीं किया, हा तुम कैसी भीषणमूर्ति धारण कर मेरे सन्मुख आये हो, इसको देख मेरे प्राण व्याकुल हो शरीर छोडकर भागना चाहते हैं. हा! क्या क—(मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरगया।

(नेपथ्यमें गानेका शब्द सुनाई आता है)

सुख निशि बीत प्रात दुख आयो।
शुक ग्रह डूब विषाद केतुको, नभमें शोर मचाये।

जहँ तहँ अग्नि बरत पृथ्वीपर, गगनधूरिसों छायो ।
बोलत काक श्वान रजनीमें, मेघ रक्त बरसायो ॥
पक्षी दुखसों रुदन करत हैं, नयनन नीर बहायो ।
पूरि रह्यो सब जग विषादसों, शोकराज प्रगटायो ॥

(द्रोणाचार्य और दुर्योधनका प्रवेश)

दुर्योधन—आचार्य ! सिन्धुराज पृथ्वीपर मूर्च्छित क्यों पडे हैं ? क्या दुराचारी अर्जुनने निशाकालमें उपस्थित होकर इनका वध किया ?

द्रोणाचार्य—यह असंभव है, अर्जुनसे कायर पुरुषोंकी नाईं कार्य न होगा ।

दुर्योधन—आचार्य ! अर्जुन आपका प्रिय शिष्य है, इस लिये आप उसका अन्याय स्वीकार न करैंगे, परन्तु विचार देखिये क्या अर्जुनने धर्मयुद्धसे पितामहको निहत किया था ?

द्रोणाचार्य—उसमें अर्जुनका कुछ दोष नहीं; पितामहकी आज्ञासे यह कार्य सम्पन्न हुवा था, यह बात मुझको भली-भांति विदित है ।

दुर्योधन—भीष्मके आदेशसे ऐसा कार्य करना क्या अन्याय नहीं है ? जिसने एकबार अन्याय किया वह सहस्र बार अन्याय करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।

द्रोणाचार्य-मैं यह नहीं कहता कि, अर्जुनने न्याययुद्धसे पितामहको पतित किया परन्तु इसमें दोष क्या है ? " शठे शाठ्यं समाचरेत् " पहिले तुमने ही उनसे अन्याय करना प्रारम्भ किया, भीमको विषमिश्रित भोजन कराकर उसका वध करना चाहा, लाक्षागृहमें पाण्डवोंके भस्म करनेकी अभिलाषा की, फिर कपटपाशक्रीडासे उनको वनवास दिया अब यदि वह ऐसा भी करैं तो आश्चर्य क्या है ? महारथियोंने अकेले निरस्त्र बालकका वध किया, इस अन्यायकी अपेक्षा उनसे कोई अधर्म नहीं हुआ. भीष्मपिताके निधनकालमें तुम सब वहां उपस्थित थे परन्तु कोई कुछ न करसका किन्तु अभिमन्युके वधके समय यदि अकेला अर्जुन भी होता तो सप्तरथी क्या सहस्त्ररथी भी अभिमन्युका बाल बाँका नहीं करसक्के, अधिक क्या कहूं ? भीमके रहते भी अभिमन्यु नहीं मारा जाता ।

दुर्योधन-कैसे मार सक्के ? जब कि, हमारे सेनापतिही शत्रुके पक्षपाती. तब फिर जयकी आशा कहाँ मुझे भ्रम हुआ, सत्य तो यह है कि, ब्राह्मणको सेनापति बनानाही महाअन्याय है ।

द्रोणाचार्य-अन्याय क्यों सहन करते हो ? ब्राह्मण तो तुम्हारे सेनापति बननेकी अभिलाषा नहीं करते अब जिसको आपकी इच्छा हो उसे सेनापति करो, मैं इससे शोकित नहीं, वरन् संतुष्ट हूं, हाय ! मुझको अभिमन्युके मारनेवाले

अधर्मियोंकी सहायता करनी पडी, अब आगेको अन्यायियोंकी सहाय न करनी पडेगी, यह तो सौभाग्यही है, मैं जाता हूं, तुम जो अच्छा समझो सो करो।

दुर्योधन–अच्छा महाराज! जाइये, मैं तुम्हारी सहायता नहीं चाहता, यदि आप जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये प्रतिज्ञा करैं कि, मैं जयद्रथको किसी प्रकार नहीं मरने दूँगा, तब आपसे किसी बातकी आशा है; नहीं तो आप क्या हैं!

द्रोणाचार्य–अहो! मैंने जयद्रथकी रक्षाके लिये प्रतिज्ञा की है और उसने मेरे आश्वासनसे रण त्याग नहीं किया, इसी लिये मैं तुम्हारी कटुउक्ति सहन करता हूं, (जयद्रथसे) प्रभात हो गया, अब विलम्ब करनेसे विघ्नकी सम्भावना है जयद्रथ वत्स! उठो, पृथ्वीपर अचेत क्यों पडे हो?

जयद्रथ–तुम कौन हो? अर्जुन! अर्जुन! मुझे मत मारो, मैं मुखमें तृण धारण कर तुमसे प्राण भिक्षा मांगताहूं।

द्रोणाचार्य–वत्स! क्या तुम विक्षिप्त हो गये? कहां है अर्जुन? मैं द्रोणाचार्य हूं।

जयद्रथ–आचार्य रक्षा करो, रक्षा करो यह गाण्डीवकी प्रत्यंचाका शब्द आता है; यह देवदत्त शंखका भयंकर नाद! यह आया, यह आया।

द्रोणाचार्य-भय नहीं, भय नहीं, चलो तुम्हें सूचीव्यूहमें छिपावें (द्रोणाचार्य और जयद्रथ दोनों गये)

दुर्योधन-वृथा आचार्यको मैंने दुर्वचन कहे; परन्तु विना कहे कार्य नहीं बनता, छल कटु वाक्य कहनेसेही अभिमन्युका वध हुवा कटु उक्ति विना वृद्ध ब्राह्मण क्रोधित नहीं होता अब चलकर सूचीव्यूहकी रक्ष करनी चाहिये (दुर्योधन सेना समेत व्यूहकी रक्षाके लिये जाते हैं और जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमन्यु नाटक प्रथमगर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय गर्भांक ।

स्थान डेरोंके निकट घने वृक्ष ।

(युधिष्ठिरका प्रवेश)

युधिष्ठिर-राज्यके लोभार्थ कैसा अनर्थ होता है? जाति, बन्धु, आत्मीय, इष्टमित्रोंको कालकवलित कर मैं राज्य भोग करूंगा ? इससे तो वनवासीही अच्छा था. पत्नी और भ्राताओंके साथ आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत होते थे। पूज्यपाद पितामहको शरशय्यापर शायित कर, प्राणाधिक अभिमन्युको कालकवलित कर राज्यलाभसे क्या सुख है? यदि भ्राता सुयोधनकी मृत्यु हुई क्या हमें सुख होगा ? कदापि नहीं; भीमार्जुन कहते हैं क्षात्रियप्रतिज्ञा, परन्तु यह प्रति-

ज्ञा दोषयुक्त नहीं है ? कबतक इस संसारमें रहैंगे ! इस जीवनकी आशा ही क्या है ? अनन्त हत्याद्वारा प्राप्त राज्य कै दिन भोग करैंगे ? जीवनका ठिकाना क्या ? और यह चिरस्थायी नहीं और कौरवगण हमारे आत्मतुल्य हैं उनका नाश करना अपनाही विनाश करना है; क्या जीवन नाश धर्म है ? कदापि नहीं, परन्तु अब क्या कर्त्तव्य है ?

(श्रीकृष्णका प्रवेश ।

श्रीकृष्ण–आर्य्य ! प्रणाम करताहूँ ।

युधिष्ठिर–(शिर नवाकर) मधुसूदन ! युद्धसे क्या फल है ? जिनके लिये राज्यसुखकी कामना है उनको ही कालके मुखमें निक्षेप करके फिर राज्य धन जीवनसे क्या प्रयोजन ? जनार्दन ! यह तो बताओ कौरवोंके संहार करनेसे हमारा क्या लाभ है ? वरन् आत्मीय नाशरूप महापापमें लिप्त होना पडेगा इसलिये आपसे निवेदन है कि, युद्धसे क्या प्रयोजन ?

श्रीकृष्ण–धर्मराज ! इस विषमकालमें आप मोह क्यों करते हैं ? आप अशोच बन्धुओंके लिये शोकग्रसित क्यों होते हो ? आप यह तो विचारिये जगत् क्या वस्तु है जीवको नाश क्या है ? मरता जीता कौन है ? जीवको क्या कष्ट है ? जो शुद्धदृष्टिसे विचार कर देखो तो कोई किसीका नहीं, नदी नाव संयोग है, जिसके कारण आप शोच करते हैं, वह अन्न

तृण, आश्रयकारी जलौकाकी नाईं इस क्षणभंगुर देहको त्याग कर देहान्तरका आश्रय लेताहै ।

युधिष्ठिर–फिर क्यों इसके लिये अनन्त पाप सञ्चय करैं ?

श्रीकृष्ण–आर्य ! पाप क्या ? धर्म त्यागनाही महापाप है आप क्षत्रिय होकर यदि धर्मपालन न करैंगे यही पाप है । शत्रुओंका विनाश करना पाप नहीं है, दुर्योधन आपका आततायी नहीं शत्रु है उसकी सेना व उसको वध करनेसे पापकी सम्भावना नहीं ।

युधिष्ठिर–यदि क्षत्रियधर्मपालनसे पुण्य भी है परन्तु तोभी बंधुवर्गोंका शोक मुझसे सहन नहीं होता ।

श्रीकृष्ण–यदि आप ऐसे ही जानते थे कि, दुर्योधनका शोक मैं सहन नहीं कर सकूंगा तो समरानलमें आहुति देनेका क्या प्रयोजन था ? वनको चलेगये होते ।

युधिष्ठिर–मेरे विचारमें तो वनका जानाही श्रेष्ठ है ।

श्रीकृष्ण–अभी नहीं आज सूर्यास्तसे पहिले जयद्रथका संहार न करनेसे अर्जुन प्राण त्याग करैंगे ।

युधिष्ठिर–चक्री ! आपकी महिमाका कोई पार नहीं पासक्ता ! आपकी जो इच्छा हो सो करो ।

(सात्यकि अर्जुन और भीमका प्रवेश)

अर्जुन–आर्य ! कल रात्रिमें मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा है मानो कृष्ण मेरा हाथ पकडकर आकाश मार्गमें लेगये हैं, मैं

क्रमसे नानादेश जनपद अतिक्रमकर कैलास पर्वतपर पहुँचा हूँ भगवान् देवाधिदेव शिवका दर्शन कर उनसे पाशुपत अस्त्र लाभ किया है।

युधिष्ठिर—यह तो श्रीकृष्णहीकी कृपा है।

अर्जुन—आर्य ! युद्धमें गमन करनेकी अनुमति प्रदान करो।

भीमसेन—हरि ! वृथा इतने दिनों गदा लेकर घूमता फिरा परन्तु कभी मेरे मनकी इच्छा पूरी नहीं हुई. अब मुझपर कृपा दृष्टि कर मेरा मनोरथ पूर्ण करो, आज इस गदाकी सहायतासे कुरुका पैदल विदलित करदूँ ? हे दयामय ! कबतक वासना पूरी होगी, तुम्हारे रहते हमको इतना शिर उठाना पडता है जबतक मेरे मनका क्षोभ और आशा पूरी न होगी तबतक कुलांगारोंका वंश विध्वंस करूंगा; हे प्रभु ! मैं अपने मनका दुःख किसे सुनाऊँ ? तुम्हारे विना हमारा कौन है ? किस दोषसे, किस पापसे, किस कर्मसे मैं आज अपमानित हुवा, इस अपमानका प्रतिशोध कब ग्रहण करूंगा ? यह मनकी प्रचंड ज्वाला कब निर्वाण होगी ? कब रणयज्ञमें शत कुरुकुलपशु बलि दिये जायँगे ? कब दुःशासनका हृदय विदीर्ण कर उष्ण रुधिर पी अपने मनकी यातना दूर करूंगा ? कब दुर्योधनकी जंघा मेरी गदासे धराशायी होगी ?

श्रीकृष्ण—(किंचित् मुसकुराकर) भीमसेन ! अब भय नहीं मनोवांछा पूरी होगी; दयामय ! जब शीघ्र रणभूमिमें

गमन करना उचित है; आज दुर्योधन दुःशासन इस गदाके प्रहारसे भ्रातृहीन होजायँगे. दुःशासन प्रयोजनके सिवाय और सब धृतराष्ट्रके पुत्र प्राण त्यागन करैंगे; जय धर्मराजकी । (भीमसेनका प्रस्थान)

युधिष्ठिर–जनार्दन ! तुम ही पाण्डवोंके बल हो; जो इच्छा हो सो करो ।

श्रीकृष्ण–पाण्डवनाथ ! आप निश्चिंत रहैं; सखा अर्जुन ! चलो समरको ।

अर्जुन–(सात्यकिसे) युयुधान ? तुम प्रद्युम्नको संग लेकर शिबिरकी रक्षा करो; हम जाते हैं ।

(कृष्णार्जुनका प्रस्थान ।

सात्यकि–महाराज ! चलिये शिबिरमें विश्राम करैं; (दोनों जाते हैं और जवनिका गिरती है)

इति शालिग्रामवैश्यकृत श्रीअभिमन्युनाटक द्वितियगर्भांक समाप्त ॥ २ ॥

तृतीय गर्भांक ।

स्थान शिबिरश्रेणी ।

(श्रेणीबद्ध पाण्डव सेना दंडायमान)

(भीमसेन गदा हाथमें लिये सन्मुख खडे हैं)

भीमसेन–सैन्यगण ! आज प्राणपण युद्ध करो, कल अधर्मसे पशुओंने बालकको वध किया था, उसका प्रतिशोध

भलीभाँति लेना होगा, भय त्याग निर्भय हो युद्ध करो; आगे बढो, हम कृष्णके आश्रित हैं, जहां कृष्ण वहां धर्म, जहां धर्म वहां जय, निर्भय होकर सब अग्रसर हो, धर्मराजकी जय बोल, पृथ्वीको कंपायमान कर दो । जय धर्मराजकी जय!

सैन्यगण–जय धर्मराजकी !

सैन्य–फिर गम्भीर शब्दसे, जय धर्मराजकी जय !

भीमसेन–जय धर्मराजकी जय !

सैन्यगण–धर्मराजकी जय !

नेपथ्यमें–धर्मराजकी जय !

(फिर नेपथ्यमें एक बारही देवदत्त और पांचजन्य शंखका शब्द)

भीमसेन–सब आगे बढो, (असंख्य सेनाका प्रस्थान) अरे कुरुकुल ! तेरे निर्मल होनेका सूत्रपात होगया श्रीकृष्णकी अमृतमयी दृष्टि हम पान करके बलवान् हुए हैं कालसे शंका नहीं करते, क्यों डरें ? हमारे श्रीकृष्णहीका आश्रय संसारके कर्ता जिस रीतिसे चलावेंगे वैसेही हम चलेंगे, अब सब सैन्यगण रणमें महा गम्भीर स्वरसे श्रीकृष्णकी जय बोलो, जय हरि दयामय, अनाथ बान्धव, इच्छामय, आपकी इच्छा पूर्ण होगी जय जय हरि दयामय ! वह दयामय अवश्यही हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे. यह जड देह अच्छा बुरा नहीं जानता परन्तु भगवान् हमारे मनकी सब जानते हैं (धर्मरा-

जकी जय धर्मराजकी जय बोलते हुए सब जाते हैं और जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक तृतीय गर्भांक समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थ गर्भांक ।

स्थान शकटव्यूहका सन्मुख भाग ।

(इधर रंगभूमिके दोनों ओर " धर्मराजकी जय हो " उधरसे " महाराज दुर्योधनकी जय " उच्चारण हो रही है)

(सन्मुख दुःशासन चालित व्यूहरक्षक सैन्यगण नेपथ्यमें शरनिक्षेप कर रहे हैं और नेपथ्यसे उनके ऊपर शर गिरते हैं) (क्रमसे "धर्मराजकी जय " भीष्म शब्दसे उच्चारण करते हुए युद्धकारी पाण्डव सैन्यका प्रवेश और दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध)

(शीघ्रतासे भीमका प्रवेश)

भीमसेन–(दुःशासनको देखकर) अरे दुःशासन ! अर्द्धरथी, किस साहससे व्यूहरक्षाका भार लिया है, भीमके रहते तुझे यह अच्छा नहीं लगता, देख मूढ ! यह मेरी गदा देख. इसी गदाके आघातसे एक दिन तुझे रणमें गिरा तेरा हृदय चीर रुधिर पान करूंगा, परन्तु आज नहीं, तेरे और दुर्योधनके देखते हुए निःसन्देह तेरे सब भ्राताओंका संहार करूंगा ।

दुःशासन–भीम ! तू वाक्यपटु है, कल क्या बल प्रकाश किया ? मूढ कल तू कहाँ था ? क्या स्त्रियोंमें था ? जयद्रथनें जगत्के सन्मुख तेरी कितनी लांछना की ?

भीमसेन–हाथी जब दलदलमें फँस जाता है तब अनायास एक गीदड भी उसको पदाघात कर सक्ता है, परन्तु जयद्रथको आज निश्चयही नरकका दर्शन होगा, और तेरे भाग्यमें क्या है मैं नहीं कह सक्ता ।

दुःशासन–अरे वाक्यवीर भीम ! यह देख ! तेरेही भाग्यमें शमनभवन है (असि ग्रहण)

भीमसेन–यह आशा ! (असियुद्ध) (रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण अर्जुनका प्रवेश) देवदत्त और पांचजन्यका शब्द ।

श्रीकृष्ण–सखे ! उस ओरको बाण वर्षण करनेसे व्यूह भिन्न होगा ।

अर्जुन–बारंबार बाण निक्षेप, श्रीकृष्णजी रथ चलाते हैं और सेना भेदपूर्वक जाती है और जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक चतुर्थगर्भांक समाप्त ॥ ४ ॥

पञ्चम गर्भाङ्क ।

स्थान शकटव्यूहका मध्यभाग ।

(सुसाज्जत द्रोणाचार्य्य)

द्रोणाचार्य–(आपही आप) जिस अर्जुनके दीनबन्धु दीनानाथ श्रीकृष्णचन्द्र सहायक हैं, उस धनञ्जयको मैं कैसे

निर्वाण करूँगा ? कैसे मेरी मनोकामना पूर्ण होगी ? इसी स्थलमें रहकर वह उपाय करना चाहिये, कि अर्जुन व्यूह भेद कर मुझे पराजित न करसके, यद्यपि वह मुझे युद्धमें परास्त करसक्ता है परन्तु गुरु जानकर मुझपर अतिक्रम न करैगा; देखूं आज किस रीतिसे शकटव्यूहपर अतिक्रम करता है ।

अर्जुन–(नेपथ्यकी ओरको अँगुलीसे बताकर) केशव ! यह आचार्य व्यूहमध्यमें दण्डायमान हैं, परन्तु मुझेभी रथ त्यागकर सन्मुख जाना उचित है ।

श्रीकृष्ण–(नेपथ्यकी ओरको देखकर) सखा ! तुम यथार्थ कहते हो, गुरुके निकट जाकर आशीर्वाद ग्रहण करो, मैं पार्श्वहीमें रथकी रक्षा करताहूं ।

अर्जुन–(द्रोणाचार्यके चरणोंमें शर त्यागकर) आचार्य्य प्रणाम करताहूं ।

द्रोणाचार्य–(अर्जुनके छोडे हुए बाणको हाथमें लेकर चूम लिया) मंगल हो ।

अर्जुन–गुरो ! मार्ग प्रदान कीजिये, जो मैं व्यूहपर अतिक्रम करूं ।

द्रोणाचार्य–विना युद्ध किये मार्ग नहीं पाओगे, कठिन उपायसे ग्रहण की हुई अस्त्रविद्याकी परीक्षा दो, जो आज देवगण गुरुशिष्यका युद्ध देखें (शर त्याग)

(दोनोंका धनुर्युद्ध)

श्रीकृष्ण-(नेपथ्यसे) अर्जुन! सखे! और वृथा समय नष्ट करना उचित नहीं, अभी बहुत कार्य करना शेष है।

अर्जुन-आचार्य! विदा होताहूं (रण त्याग)

द्रोणाचार्य-अर्जुन! आज तुम्हारे विजयनामकी सार्थकता क्या हुई! तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि, समरमें शत्रुको विना पराजित किये निवृत्त न हूंगा, वह प्रतिज्ञा कहां गई?

अर्जुन-आचार्य! आप हमारे गुरु हैं, शत्रु नहीं (प्रस्थान)

द्रोणाचार्य-यह क्या, जो अर्जुन रण त्यागकर चला गया? अब कैसे प्रतिज्ञा पालन होगी? नहीं नहीं, अर्जुनको बाधा देकर निवृत्त करना चाहिये, (प्रस्थानोद्योग)

दुर्योधन--आचार्य! यह क्या हुवा? अर्जुन आज शकटव्यूहपर आतिक्रम करता है अब क्या उपाय करैं? मुझे विश्वास था कि, अर्जुन आपके ऊपर अतिक्रम नहीं करसकेगा परन्तु यह क्या हुवा?

द्रोणाचार्य-वत्स क्या किया जाय? अर्जुनने मेरे साथ युद्ध नहीं किया वरन् श्रीकृष्णके परामर्शसे मुझे त्याग कर गया देखो अब उसका रथध्वज दृष्टि नहीं आता।

दुर्योधन-अब कुछ उपाय बताओ।

भीमसेन-(सहसा प्रविष्ट होकर) शीघ्र शमनसदन जाओ ! आज देखूँ तेरी कितनी आयु शेष है ?

(दोनोंका गदायुद्ध)

द्रोणाचार्य-वत्स दुर्योधन ! तुम सूचीव्यूहकी रक्षामें नियुक्त हो; मैं भीमकी रणतृष्णा निवारण करताहूँ; (भीमका आक्रमण) (दुर्योधनका प्रस्थान) (भीमसेन और द्रोणाचार्य युद्ध करते हुए गये) (धृष्टद्युम्नका प्रवेश)

धृष्टद्युम्न-कुरुवीरोंमें अर्जुनने केवल द्रोणाचार्यपर अतिक्रम नहीं किया, यदि आचार्य अर्जुनकी गति रोकें तो जयद्रथके मरणमें सन्देह है, मैं द्रोणाचार्यसे अवध्य हूँ क्योंकि उनके मारनेहीके लिये मैं उत्पन्न हुआ हूँ । यदि मैं प्राणपणसे युद्ध करूं तो अवश्यही द्रोणाचार्यको निहत करूं, नहीं समस्त दिन एक स्थलपर खडा रक्खूं, इसमें किञ्चित् सन्देह नहीं, यह आचार्य भीमसेनके संग युद्ध करते हुए इसी ओर चले आते हैं (भीमसेन और द्रोणाचार्यका गदायुद्ध करते हुए प्रवेश) आर्य ! वृकोदर ! आप आचार्यसे युद्ध करते रहेंगे तो कार्य कैसे होगा ? जबतक आप व्यूहमें प्रवेश कर कुरुसैन्य न संहार करेंगे तो अर्जुनकी प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी ? आप स्वच्छन्द शकटव्यूह पर अतिक्रम कीजिये मैं द्रोणाचार्यसे युद्ध करता हूं, (शर त्यागकर द्रोणाचार्यकी गदाके खंड २ कर देना) (भीमसेनका प्रस्थान) आचार्य ! इसी पञ्चाल बालकके हाथसे आपकी

मृत्यु होगी; आपको स्मरण होगा कि, मैंने आपकेही मारनेके लिये जन्म धारण किया है मैं आपको रणमें आह्वान करताहूं कि आकर अपने बलकी परीक्षा दीजिये।

द्रोणाचार्य-शिशु! तुझे बलकी परीक्षा देंगे, यह स्मरण कर हास्य सम्वरण नहीं होता, तेरे शरीरसे अभी दुग्धगन्धभी दूर नहीं हुई।

धृष्टद्युम्न-कुछ हो परन्तु मैं तुम्हारा काल हूँ।

द्रोणाचार्य-विधाताके अंकको कौन मेट सक्ता है! यदि आज मेरे भाग्यमें वह शुभ दिन हो, यदि पापमय पृथ्वी त्यागन कर सकूं तो इससे अधिक सुख क्या है? अच्छा असि धारण कर? (दोनों असियुद्ध करते हुए जाते हैं और धीरे धीरे जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्राम वैश्यकृत अष्टम अंक समाप्त ॥ ८ ॥



श्रीः ।

अथ नवम अंक ।



प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान राजसभा)

(सिंहासनपर धृतराष्ट्र और कुशासनपर विदुरजी विराजमान हैं)

धृतराष्ट्र—विदुर ! अब ब्राह्मण, पण्डित, ऋषि, तपस्वी हमारी सभामें क्यों नहीं आते इसका क्या कारण है ? क्या वह युद्ध करने जाते हैं ?

विदुर—(निरुत्तर)

धृतराष्ट्र—उत्तर क्यों नहीं देते ? हां, तुम उनके आने न आनेका उत्तर विना जाने कैसे दे सक्ते हो ? हां, न जानिये विधाताको क्या करना है ?

विदुर—मैं सब जानता हूँ, परन्तु तुमसे कहनेसे लाभ क्या ? अपनी इच्छासे कौन पापमें गिरता है ? यहां पापकथा कुपरामशके अतिरिक्त कुछ सुनाई नहीं पडता, अब ऋषि मुनि यह बातें सुनै;—या एकान्तमें बैठ हरिचरणोंका ध्यान करैं ।

धृतराष्ट्र—विदुर !

विदुर—हां महाराज !

धृतराष्ट्र—तुम हमारे मंत्री होकर भी हमारे पास पूर्ववत् नहीं आते ? इसका क्या कारण है ?

विदुर—आप अनुग्रह करके मेरा आदर सत्कार करते हैं; इस कारण यह दास धन्य है; एक तो कोई राजकार्य नहीं दूसरे मेरी सम्मतिके अनुसार कोई कार्य नहीं होता इसलिये मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैं मुक्ति होनेके कारण रात दिन हरिचरणोंका ध्यान करता रहताहूँ, जब आपका कुछ कार्य हो सम्वाद देतेही मैं प्रस्तुत होऊं।

धृतराष्ट्र—विदुर ! तुम्हें अभीसे वैराग्य सूझा हरिभजन करनेको बहुत समय पडा है, अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुनकर मेरा चित्त व्याकुल होता है, युद्धमें अनेक दूत भेजे हैं परन्तु अबतक कोई लौटकर नहीं आया, विदुर ! तुम्हारी सम्मतिसे दुर्योधनको कईबार निषेध किया परन्तु कालवश हो उसने एक न माना, अब हमारे पक्षका निस्तार नहीं विदित होता, विदुर ! कोई आया नहीं।

विदुर—(देखकर) आपके प्रेरित दूतको संग लिये संग्रामस्थलसे कृपाचार्य आते हैं. (दूतसहित कृपाचार्यका प्रवेश)

धृतराष्ट्र—आचार्य ! बिराजिये—प्रणाम करताहूँ, हाँ, अर्जुनकी प्रतिज्ञा निष्फल करनेके लिये क्या उपाय सोचा गया है ?

कृपाचार्य—महाराज ! आज द्रोणाचार्यने अर्जुनका मनोरथ निष्फल करनेके लिये एक कोशके घेरेमें एक शकटव्यूह

निर्माणकर उसके पीछे एक आध कोशके अन्तर पद्मव्यूह निर्माण किया है, उस पद्मव्यूहके अभ्यन्तरमें एक सूची व्यूह निर्माण कर उसमें जयद्रथको रक्षित किया है, आपका पुत्र दुःशासन आठ सहस्र पैदल सेना लेकर शकटव्यूहके द्वारपर रक्षा करता है और स्वयं आचार्य पद्मव्यूहके द्वारपर दण्डायमान हैं और दुर्योधन, कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, शल्य, यह छः महारथी सूचीव्यूहकी रक्षा करते हैं।

धृतराष्ट्र—अब कुछ भय नहीं, अर्जुन आचार्यको परास्त नहीं करसक्ता मैं अन्तःपुरमें जाकर सबको यह वृत्तान्त सुनाऊं। वहां सब अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुनकर अत्यन्त व्याकुल हैं, दूत रनवासका मार्ग बताओ (दूतको अवलम्बन कर धृतराष्ट्रका प्रवेश)

विदुर—आचार्य ! फिर क्या हुवा ? महाराज तो व्यूह रचना सुनकेहा उन्मत्त होगये, जो मनुष्य आशाके दास हैं उनको यही अवलम्बन बहुत है।

कृपाचार्य—मैं अभी देखकर चला आताहूं कि, अर्जुन अभी द्रोणाचार्यपर अतिक्रमण कर शकटव्यूहके अभ्यन्तर प्रवेश करते थे, भीम व सेना घोर युद्ध कर रही है एक बात और है (मृदुस्वरसे) आचार्य द्रोण कल कहते थे कि मैंने योगवलसे जाना है कि, अर्जुन कल अवश्य जयद्रथका संहार करैगा।

विदुर—यह कौन नहीं जानता ? जहाँ कृष्ण वहां जय अब चलकर मुझ दासकी कुटी पवित्र कीजिये, अब जीवहिंसासे विरति हो युद्धमें जानेका कुछ प्रयोजन नहीं।

कृपाचार्य—क्या करूं मेरी इच्छा युद्धमें गमन करनेकी नहीं है, परन्तु मैं दुर्योधनके अन्नसे प्रतिपालित हूँ इसलिये उसका उपकार करनाही उचित है, अच्छा आज मध्याह्न काल युद्धमें गमन करूंगा (दोनों जाते हैं और परदा गिरता है.)

इति श्रीअभिमन्युनाटक प्रथमगर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय गर्भांक।

स्थान काननभूमिमें स्त्रियोंके डेरे।

(सुभद्रा और उत्तरा बैठी सोच कर रही हैं.)

सुभद्रा—मेरा मन व्याकुल क्यों होताहै ? प्राणेश्वर सायंकालमें यहां प्रतिदिन आते थे परन्तु कलसे क्यों नहीं आये प्राणपुत्र अभिमन्यु युद्धान्तमें यहां गमन कर मुझे माता ! माता ! पुकारकर हृदयको मधुमय कर देता था, परन्तु न जानिये वह दो दिनसे क्यों नहीं आया ! कुछ समझ नहीं पडता, मेरा मन क्यों इतना व्याकुल होता है। और जब निशा युद्ध होता था तो हमारे पास समाचार आता था, परन्तु आज समाचार क्यों नहीं आया ? अब किसके समीप जाऊं ? कौन मुझे संवाद दे, कौन मनकी व्यथा दूर करे ? (दूरसे

देखकर) यह क्या आज उत्तराका कैसा वेष है (अस्तव्यस्त वेषसे उत्तराका प्रवेश)

उत्तरा–माता मुझे क्या हुवा ?

सुभद्रा–पुत्री क्या होयगा ?

उत्तरा–माता मैंने कल निशावसानमें बड़ा दुःस्वप्न देखा है यह स्वप्न कैसा है ? परमेश्वर जाने क्या होना है ? उस स्वप्नको देख मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं, शरीर निर्बल होगया

सुभद्रा–पुत्री ! क्या दुःस्वप्न देखा ! बताओ तो, दुःस्वप्नका फल दूसरे मनुष्यके आगे कहनेसे जाता रहता है ।

उत्तरा–माता ! उस स्वप्नका ध्यान आनेसे मेरा हृदय कम्पायमान होताहै ।

सुभद्रा–बेटी ! कुछ तो कह, जो मेरे मनको धैर्य हो ।

उत्तरा–रात एक महाउज्ज्वल ज्योति विमानमें बैठीहुई आकाशको जाती थी मुझे देखकर उस ज्योतिने कहा उत्तरे ! अभागिनि यही अन्तिम–यह कहते कहते वह रथमयज्योति निशाकरमें समागई, फिर नहीं दिखाई दी, माता ! यह स्वप्न कैसा है ?

सुभद्रा–वत्से ! कुछ चिन्ता नहीं ।

उत्तरा–जातीहूं, परन्तु प्राण शरीरमें ज्ञात नहीं होते (धीरे धीरे प्रस्थान)

सुभद्रा—स्वप्नकी वार्ता सुनकर जी घबराता है, हे विपत्तिभंजन शंकर ! हे भयविनाशिन् विश्वनाथ ! शीघ्र दुःखका नाश करो, अब चलकर महाराजके शिविरमें पाञ्चालीको भेजूं ।

(द्रौपदीका प्रवेश)

द्रौपदी—सुभद्रे ! अबतक युद्धस्थलसे कुछ समाचार नहीं आया ? दासीको भेजा था वह कहे थी कि, प्रहरीने मुझे शिविरमें नहीं जाने दिया उसने कहा कि, महाराज व्याप्त हैं ।

सुभद्रा—जानैं आज मेरे प्राण बार बार क्यों रुदन करते हैं ? कलसे पुत्र अभिमन्यु भी नहीं आया ।

द्रौपदी—पुत्र न आनेके कारणही प्राण घबराते होंगे; जो दिनमें दश बार माता २ पुकारै उसका न आना बडा आश्चर्य है, मैंने विचारा था कि, कल युद्धमें थक गया होगा इसलिये नहीं आया, परन्तु तुम्हारी बात सुनकर मन अत्यन्त व्याकुल हो गया, अब मुझसे यहां नहीं रहाजाता, मैं स्वयं महाराजके निकट जाती हूं, तुम भी शिविरमें गमन करो (प्रस्थान)

सुभद्रा—कहां जाऊं ? कुछ अच्छा नहीं लगता शिविरमें जाऊँ ? जाकर क्या होगा ? मेरा अभिमन्यु नहीं ! कौन मुझे मा ! मा ! कहकर पुकारैगा ? यह क्या ? यह कैसी

भावना ? हे दयामय ! हे भूतभावन ! हे भवानीश्वर ! हे अनाथनाथ ! हे देवाधिदेव ! मेरे सर्वस्वधन प्राणपुत्र अभिमन्यु कुमारकी रक्षा करो मेरे हृदयकी शान्ति, नेत्रोंकी ज्योति अभिमन्युकी रक्षा करो (सब जाती हैं और परदा गिरता है)

इति श्रीअभिमन्यु नाटक द्वितीयगर्भांक समाप्त ॥ २ ॥

तृतीय गर्भांक ।

स्थान पाण्डवोंके डेरे ।

(युधिष्ठिर और सात्यकिका प्रवेश)

युधिष्ठिर—मनुष्य कैसे भयानक लोभका दास है; राज्य लोभसे मैं किस कर्ममें प्रवृत्त हुआ हूँ ? परमाराध्य पितामहको शरशय्यापर शयन कराया, मेरे कारण कितने राजा निहत हुए और होंगे उनकी संख्या नहीं. इस संग्राममें विदित होता-है कि, पृथ्वी शून्य हो जायगी, आज भगिनीपति जयद्रथ निहत होकर पृथ्वीपर शयन करेंगे, हाय ! क्या कष्ट है ? दुःशला हमारी एक मातृभगिनी जन्मपर्यन्तको वह अनाथिनी हो जायगी, मैंही इस अनर्थका मूल हूँ ।

सात्यकी—राजन् ! आप नहीं, पापी दुर्योधनही इस अनर्थका मूल है । द्यूतकी क्रीडाही उसका अंकुर है; यह उसी अनर्थतरुका फल प्रतीत होता है ।

युधिष्ठिर-(अनसुनी करके): सात्यकि ! अर्जुनका कपिध्वज दृष्टि नहीं आता, न जानिये रणमें क्या अनर्थ हो रहा है ज्ञात नहीं होता ? देखो हमारे सैन्यमें किसीका रथध्वज दृष्टि नहीं आता, परन्तु कौरवपक्षी रथध्वज बहुत दृष्टिगोचर होते हैं सात्यकि तुम शीघ्र अग्रसर हो देखो कि क्या समाचार है। मेरा मन व्याकुल होता है।

सात्यकी-महाराज ! भगवान् वासुदेवके रहते अर्जुनके लिये क्या चिन्ता है ?

युधिष्ठिर-सात्यकि ! तुमको अवश्य जाना होगा।

सात्यकि-धर्मराज ! अर्जुन मुझे शिबिर रक्षापर नियुक्त कर गये हैं।

युधिष्ठिर-क्या शिबिरमें और कोई नहीं ? नकुल, सहदेवके रहते और किसीकी क्या आवश्यकता है ? तुम शीघ्र अर्जुनका समाचार ले आओ।

सात्यकि-जो आपकी आज्ञा, परन्तु आपभी शिबिरको प्रस्थान कीजिये, यहां अरक्षित भावसे रहना उचित नहीं मैं जाताहूँ (प्रस्थान) मध्याह्नगीत ॥

अहो रवि भीषण तेज धरो।
गगन समुद्र अग्निसम कीजे, भूतल लाल करो ॥
निर्जल करो सरोवर सर सब, शीतल पवन हरो।

समरभूमिमें बीरधनञ्जय, शत्रुनमांझ परो ॥
आश महाभारत भारतमें, मनमें धीर धरो।
शालिग्राम सहायक जाके, सो निर्भय विचरो ॥

युधिष्ठिर-यह क्या ? मध्याह्न होगया ? अब रणमें क्या होगा यह विचार चित्त व्याकुल होताहै, यदि किरीटी सूर्यास्तसे पहिले जयद्रथको न मारसका तो क्या होगा ! मैं अर्जुन विना एक पल पृथ्वीपर नहीं रहसक्ता मैं भी उसी अनलमें अपना प्राण दग्ध करूंगा; भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेकी चेष्टा करते हैं, परंतु महादेवदत्तवरदर्पित जयद्रथके सन्मुख कै घडी युद्ध करेंगे ? कल सब ज्ञात होगा, एक अकेले अर्जुन ही दुर्घटना कैसी हुई ? हा पुत्र अभिमन्यु !

(द्रौपदीका प्रवेश)

द्रौपदी-महाराज ! प्राणपुत्र अभिमन्यु कहां है ?

युधिष्ठिर-प्रिये ! तुम यहां !-

द्रौपदी-नाथ ! क्या हुवा ? क्या अनिष्ट किया ? सुभद्राका एक मात्र अंचलनिधि, सोभी कालके मुखमें दोदिया; हा पाषाण-

युधीष्ठिर-प्रिये ! मेरे पाषाणहृदय होनेमें कोई सन्देह

नहीं यह पापी प्राण जाने क्यों नहीं निकलते ? अब शिबिरमें चलो (द्रौपदीके संग जाते हैं और जवनिका पतित होती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक तृतीयगर्भांक समाप्त ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ गर्भांक।

स्थान रणस्थल।

(इधर उधर मृतक सैन्य हाथी घोडे इत्यादि पडे हैं ।)

(धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे गदायुद्ध करते हुए भीमसेनका प्रवेश)

(धृतराष्ट्रके पुत्र कोई असि, कोइ धनु शर इत्यादि द्वारा भीमपर चहुँ ओरसे अतिक्रम करते हैं। भीमकर्तृक गदा द्वारा आत्मरक्षा करते हुए एक एक करके धृतराष्ट्रके९० नब्बे पुत्रोंका वध)

भीमसेन-(धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मृतक देखकर) आजके व्रतका उद्यापन होगया; दुर्योधनके भ्राता मृत्युके मुखमें पतित हुए, अहाहा ! पापात्माओंकी कैसी दुर्दशा हुई ! धन्य हे दयामय ! जो इन शत्रुओंके बाणोंसे मुझे बचाया; नहीं तो मेरी क्या सामर्थ्य थी, जो असंख्य सेनाका संहार करता, हे भक्तवत्सल ! तुम्हारी महिमा तुम्हारे गुणोंका यह तुच्छ मनुष्य कैसे पार पा सक्ता है ? गर्वित दुर्योधनने तुम्हारी महिमाको न जानकर तुम्हें रज्जुसे बाँधना चाहा था; यदि तुम्हारी कृपा हमपर न होती तो धर्मराज पृथ्वीका भार और राजसूययज्ञ कैसे करते ? हमें लाक्षामन्दिरसे कौन उद्धार करता ? (दूरसे

देखकर) इधरको दुरात्मा दुर्योधन आता है, अब मैं अंजालिकाविद्याके प्रभावसे अन्तर्हित हो, इस हस्तीके शरीरमें प्रवेश कर देखूँ कि; भ्रातृशोकसे दुर्योधन क्या करता है ? गजके शरीरमें भीमसेनका प्रवेश दुर्योधनका आगमन)

दुर्योधन-(भ्राताओंको मृतक देखकर) हाय ! हाय ! यह क्या देखताहूँ मेरे भ्राता प्राणहीन हो भूतलमें लोट रहे हैं. क्या मैं आज भ्रातृहीन होगया ? अरे कोईभी जीवित नहीं क्या सबही मृतक होगये ? हाय ! अब मैं क्या करूँ ? किसे भ्राता भ्राता पुकारूं ? माता पिताको मैं क्या मुख दिखाऊंगा ? हा ! कैसे किस मुखसे ? अब किस सुखके कारण प्राण धारण करूंगा ? हा मृत्यु ! आकर दर्शन दो, यह मर्मस्थानकी ज्वाला निर्वाण करो, अब नहीं सही जाती. आत्मीय स्वजनोंको यमसदनमें भेजकर मैं किस मुखसे जीवित रहूँ ? (भीमका आविर्भाव)

भीमसेन-दुर्योधन ! मुझे पहिचानता है ? धृतराष्ट्रवंशलोपकारी भीमसेन हूँ, अब कुरुकुल निर्मूल होनेमें विलम्ब नहीं तैंने अपने मृतक भ्राताओंकी गणना कर ली है ? स्मरण है, जब द्रौपदीको सभामें लाकर मुझे और धर्मराजको क_ उक्त उच्चारण कर उपहास करके कहा था " एक दिन वह था और एक दिन यह है" "हरिको बन्धन" " पाण्डवोंको दुर्बल कर क्या निर्धन करनेकी अभिलाषा अभी है ? " अरे मूढमति ! धूरिमें

पृथ्वीके सामान्य शृंखलासे क्या किसीने त्रिलोकीनाथको बांधा है? वह केवल यशोदा जननीके स्नेहपाशमें बँधे; राजा बलिके पाशमें बँधकर उसके द्वारे रहे, क्या उन भगवान् वासुदेवको तू बांधना चाहता है? भक्तोंके वशमें सर्वदा अन्तर्यामी भगवान् वास करते हैं।

दुर्योधन—रे दम्भी! बालकोंको मारकर इतना दर्प करता है, रे दुष्टाचारी! तू एक तृणके समान है, तुझे नागपाशमें बांधकर कारागारमें रक्खूँगा, तब भ्रातृशोकाग्निका निर्वाण होगा।

भीमसेन—मूढ! यह आशा दुराशामात्र है, तू वृकोदरको नागपाशमें बन्धन करेगा? अरे मूर्ख! हम क्षत्रियलोग नागपाशका भय नहीं करते, यदि भय मानता है तो जयद्रथके समीप जाकर अपने तृणतुल्य प्राणोंकी रक्षा कर। नहीं अभी तेरा भ्रातृगणका शोकानल इस गदाघातसे चिरकालके लिये निर्वाण होगा। (यह कहते दोनों युद्ध करतेहुए जाते हैं और जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक चतुर्थ गर्भांक समाप्त ॥ ४ ॥

पंचम गर्भांक ।

स्थान रणभूमिका अपरभाग ।

सात्यकि दण्डायमान ।

(असियुद्ध करतेहुए द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका प्रवेश)

द्रोणाचार्य-पांचालबालक ! तेरे बाहुबलको धन्य है, तेरे युद्धसे मैं सन्तुष्ट हूँ, इतने कालतक असियुद्ध करते मैंने किसीको नहीं देखा, अब शान्त हो, कछुक विश्राम ले ।

धृष्टद्युम्न-आचार्य ! आपको क्लेश होता है ? यदि ऐसा हो तो आप पलायन कर युद्धसे चले जाइये और प्रकार निस्तार नहीं ।

द्रोणाचार्य-अरे पामर ! मेरा उपहास करता है ? अब तेरा वीरत्व देखता हूँ कि, कैसा बलवान् है ? (बलसे असि उत्तोलन)

सात्यकि-(शर त्यागकर द्रोणाचार्यका असिके दो खण्ड करना) पितामह ! आप मेरे गुरुके गुरु हैं, इसी कारण पितामह कहा, मैंने अपने गुरुसे कैसी शरशिक्षा ग्रहण की है सो देखिये (दोनोंका धनुर्युद्ध) (द्रोणाचार्यका पंचदश बार धनुष ग्रहण करना और सात्यकिका खण्डन करना) पितामह ! अबतक तो परिहास किया, इससे क्षुब्ध मत हूजिये अब सात बाण ग्रहणपूर्वक एक शरसे पुनर्वार आपका धनुष छेदन और

छः बाणोंसे आपको विद्ध करता हूँ (बाण छोड) (द्रोणाचार्यकी असिद्वारा आत्मरक्षा; कुछ राजाओंका प्रवेश सब राजा एक साथ सात्यकिपर आक्रमण करते हैं, कुछ कालोपरान्त कतिपय पाण्डव सेनाका प्रवेश, दोनों ओरके वीर महासंग्राम करते हुए चले जाते हैं और परदा गिरता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक पञ्चमगर्भांक समाप्त ॥ ५ ॥

षष्ठ गर्भांक ।

स्थान रणभूमिका मध्यभाग ।

(गदा हाथमें लिये भीमसेनका प्रवेश)

भीमसेन–क्या आश्चर्य है ! जिस ओरको मैं युद्धस्थलमें निकल जाता हूं मुझे देखकर सब भाग जाते हैं, रे क्षत्रियाधम ! कुलांगार ! यदि प्राण प्रिय थे तो युद्धमें कलंकभागी होनेको क्यों आये ? घटोत्कचका प्रवेश)

घटोत्कच–पिता अलंबुष निहत हुवा; अब मुझे क्या आज्ञा है ?

भीमसेन–वत्स ! शत्रुपक्षमें जिसे पाओ उसका बिना विचारे संहार करो ।

घटोत्कच–पिता ! मैं शत्रुपक्षमें जिसे पाओ भलीभांति नहीं पहिचान सक्ता !

भीमसेन-(रणमें गमनकर) उच्चस्वरसे "धर्मराजकी जय" पुकारो, उसके प्रतिशब्दमें "कुरुराजकी जय" बोले उसका विनाश करना ।

घटोत्कच-जो आज्ञा ! धर्मराजकी जय ।

भीमसेन-जय धर्मराजकी !

(नेपथ्यमें कुरुराजकी जय)

भीमसेन-हे गदाधर ! तुम्हारी कृपासे (९०) नब्बे कौरवोंका संहार किया अभी धृतराष्ट्रके दश पुत्र और जीवित हैं, मैं प्रतिज्ञा करताहूं कि; उनमेंसे आठको आज और धराशायी करूंगा, हे हरि ! मेरी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये ।

(नेपथ्यमें बहुत कंठोंसे धर्मराजकी जय)

भीमसेन-धर्मराजकी जय ! भला ! दुष्टो ! मैं आया खडे रहो ।

(नेपथ्यमें बहुत मनुष्योंके मुखसे कुरुराज दुर्योधनकी जय)

(नेपथ्यसे घटोत्कच कैसी दुर्योधनकी जय)

(वृक्ष शाखाद्वारा दुःशासन और उसके आठ भाइयोंको ताडना करते हुए घटोत्कचका प्रवेश)

भीमसेन-घटोत्कच ! दीर्घजीवित हो तैंने मेरी मनोकामना पूर्ण की (सबसे युद्ध कुछ काल व्यतीत होने पर दुःशासनके सिवाय दुर्योधनके आठ भाइयोंका मरण) दुःशासन ! देख ! भीमसेन वाक्यपटु है वा कार्यपटु है ? ईश्वरकी कृपासे मेरी

प्रतिज्ञा पूर्ण हुई, तुम और दुर्योधन भ्रातृहीन हुए, आज रण-भूमिमें अठानवे (९८) धार्तराष्ट्रोंका संहार हुवा, तुम दो जने कुछ दिन और पुत्र, मित्र, भ्राता, बंधुगणोंका शोक कर लो, फिर दुर्योधनके समक्ष तेरा हृदय चीर रुधिर पी अपने हृदयकी अपमानानल जो चिरकालसे मनको भस्म कर रही है उसको बुझाऊँगा; फिर अन्तमें प्रेरण करूंगा।

दुःशासन–मैं विनय करता हूं कि, मुझको मारकर भ्राताओंके शोकसे मुझे छुटा दे।

भीमसेन–और दो चार दिन माता पिताका मुख देख ले, (यह कह भीमसेन जाता है और धीरे २ जवनिका पतित होती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्राम वैश्यकृत नवम गर्भांक और नवम अंक समाप्त ॥ ९ ॥



अथ दशम अंक।

प्रथम गर्भांक।

(स्थान व्यूहके मध्यमें वृक्षतले श्रीकृष्णार्जुनका प्रवेश)

श्रीकृष्ण—सखा ! मध्याह्नकालीन सूर्यके उत्तापसे रथोंके घोडे व्याकुल होगये हैं, इस कारण थोडी देरके लिये विश्राम करना चाहिये; तुम बाणोंसे इस स्थानको आच्छादित कर दो; मैं तुरंगोंकी परिचर्य्यामें नियुक्त होता हूं।

अर्जुन—(जो आपकी इच्छा अर्जुनका एक कालमें अनेक बाणोंका छोडना और उनसे एक वेष्टित स्थान बनजाना)

श्रीकृष्ण—मैं अश्वोंको विश्राम करनेके लिये छोडताहूं. परन्तु इन अश्वोंको जल कैसे मिलेगा ? विना जल पिये यह एक पग नहीं चलसक्के।

अर्जुन—आपके प्रसादसे जलका भी उपाय होताहै, (बाण. से पृथ्वीको विदीर्ण कर जलका सोता निकालना. श्रीकृष्णका घोडोंको पानी पिलाना, अर्जुनका सोतेके जलसे हाथ मुख धोना; तथा सब विश्राम करते हैं और परदा गिरता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक प्रथमगर्भांक समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय गर्भांक।

स्थान रणस्थल।

(नेपथ्यमें रणसिंहेका शब्द और कुलाहल हो रहा है)

(भूरिश्रवाका प्रवेश)

भूरिश्रवा–अरे सात्यकि! बहुत दिनों पीछे सन्मुख आया है अब मनका सन्ताप दूर होगा, आज समस्त वृष्णि-वंशके सदृश पलायन अवलम्बन मत करना।

(वेगसहित सात्यकिका प्रवेश)

सात्यकि–अरे सोमदत्तके अकालकूष्माण्ड अपनेही समान सबको जानता है, तैंने कभी वृष्णि, अन्धक, भोजवंशि-योंको रणमें भागता देखा है?

भूरिश्रवा–सात्यकि! अभीसे भूल गया? कल तो यव-नोंके भयसे तेरे गुरुके सारथि भागते थे अब तू मेरे आगे वीरता दिखाने आया है।

सात्यकि–पामर! ऐसी स्पर्धा करता है, आज देखूँगा तेरा कितना बाहुबल है, पृथ्वीपर ऐसा कोई वीर नहीं, जो सात्यकिके सन्मुख श्रीकृष्णकी निन्दा कर जीता रहै, आज निश्चय यह सुतीक्ष्ण असि तेरा उष्ण शोणित पान करके तृप्त होगी। (असि निकालकर) असि! तेरे अवलम्बनसे सैकडों समरसागर पार कर दिये, तेरेही प्रसादसे श्रीकृष्ण मुझे अपना

दक्षिण हस्त समझते हैं सहस्रोंबार वीरोंके कण्ठ शोणितसे तुझे तृप्त किया है, आज भूरिश्रवाका उत्तम रुधिर, कृष्णनिन्दकका उत्तप्त रुधिर पान कर अपने हृदयकी ज्वाला बुझा, रे बाहु बहुत कालतक तुझे मल्ल भूमिकी धूरिसे तृप्त करता आया हूं, आज एक बार यह भीषण असि अवलम्बनपूर्वक भूरिश्रवाके सम्मुख अपना पराक्रम दिखा; मुझसे कृष्णनिन्दा नहीं सही जाती, कृष्णनिन्दाका फल यह देख ले ।

भूरिश्रवा–अरे सात्यकि ! बाहोंको पुकार पुकार कर अभी कितना प्रलाप करेगा ? मैं भले प्रकार जानता हूँ कि तेरे बाहुबलकी अपेक्षा तुझमें वाक्य बल अधिक है ।

सात्यकि–रे नीच ! क्यों वृथा बकवाद करता है; रे पामर ! अब अपनी रक्षा कर, मैं आया, (आक्रमण) (भूरिश्रवा और सात्यकिका युद्ध होने लगा, और दोनों ओरका कटकभी बेखटके संग्राम कर रहा था)

(रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णार्जुनका प्रवेश)

श्रीकृष्ण–सखा ! सूचीव्यूहका मुख वह दृष्टि आता है इसके भेद करतेही जयद्रथ मिलेगा (दूसरी ओर देखकर) धनञ्जय ! सात्यकिकी रक्षा कर, वह देखो ! भूरिश्रवा उन्हें पृथ्वीमें गिरा मारनेके लिये असि तोलन कर रहा है ।

अर्जुन–उसी ओरको बाण छोडा ।

श्रीकृष्ण-साधु ! साधु ! साधु ।

भूरिश्रवा-(अपना छिन्न हस्त वाम करमें लेकर) अर्जुन तुम वीर नहीं हो, क्या वीरोंके यह काम हैं तुम्हारी वाणशिक्षाको धिक्कार है, तुम वीर नहीं वीरकलंक हो, और अधिक क्या कहूं जो काम तुमने किया है उसे करते हुए पिशाच भी संकुचित होते हैं।

अर्जुन-महात्मन् ! अकारण निन्दा क्यों करते हो ! क्या आप विस्मृत होगये ? रणमें आत्मीयोंकी रक्षा करनाही वीराकों धर्म है !

भूरिश्रवा-(रथके सन्मुख अपना छिन्न हस्त रखकर मस्तक द्वारा भूमि स्पर्शपूर्वक प्रायोपवेशन)

श्रीकृष्ण-तुम असंख्य अग्निहोत्रका फल लाभकर ब्रह्मलोकको गमन करो (रथ हांककर चल दिये) (दोनों ओरकी सेना निश्चेष्टभावसे भूरिश्रवाको देख रही है)

(सात्यकिका प्रवेश)

सात्यकि-(भूरिश्रवाका मस्तक छेदनकर) रे पाखण्डी तू मेरी छातीमें पदाघात कर अब मुनियोंकी नाईं मौन धारण कर बैठा है।

नेपथ्यसे-रे वीरकलंक सात्यकि ! तुझे सहस्रवार धिक्कारहै।

सात्यकि-सैन्यगण ! निश्चेष्ट होकर क्या देखतेहो ? युद्धमें कौरवोंको परास्त करो " जय धर्मराजकी जय "

देववाणी-रे धर्मकंचुकधारी सात्यकि ! तैंने जैसे मत्तकी नाईं प्रायोपविष्ट भूरिश्रवाका वध किया है, यही उन्मत्त अवस्था तेरी मृत्युकालमें होगी (इस देवशब्दको सुनकर सब चकित होते हैं और परदा गिरता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक द्वितीय गर्भांक समाप्त ॥ २ ॥

तृतीय गर्भांक ।

स्थान-सूचीव्यूहका मध्यभाग ।

(जयद्रथ और शकुनि परस्पर वार्ता कर रहे हैं)

शकुनि-अब क्या भय है ? सूर्यनारायण अस्त होनेही चाहते हैं ।

जयद्रथ-मातुल ! विश्वास नहीं होता, यह देखो ! अर्जुनका रथध्वज क्रमशः आगेही बढता चला आता है, बोध होता है कि, सूर्यास्तके संगही संग मेरा जीवनभानु भी अस्त होगा ।

शकुनि-यह दुर्वाक्य मत कहो, रथ बहुत दूर है, अभी पद्मव्यूह भी नहीं भेदा गया है; मैंने दुर्योधनसे कह दिया है कि सप्तरथी एककालमें अर्जुनसे युद्ध करैं, जैसे इसका पुत्र सप्तरथियोंके हाथसे मारागया, इसी प्रकार अर्जुनका भी संहार होगा ।

जयद्रथ–मातुल ! आप आशा देते हैं परन्तु मन नहीं मानता, मेरा शरीर अब शून्य होता जाता है, न जानिये ईश्वरको क्या करना है कुछ जाना नहीं जाता ? हा मातुल ! महादेवजीने कहा था कि, अर्जुनके सिवाय तुझे कोई नहीं मारसक्ता वह यही अर्जुन है; जिसने मेरे वधकी प्रतिज्ञा की है; यह देखो ! यह निकट आता है, अब क्या होगा ? मातुल ! मुझे ले चलो मैं धर्मराजकी शरणागत होजाऊँ ।

शकुनि–तुम नितांत बालक हो; अर्जुन कहां है, तुम कहां हो ? सूर्य भगवान् अस्त हो रहे हैं परन्तु तुम्हारी शंका नहीं जाती, देखो अर्जुनका रथध्वज स्थिर है, वह सूर्य अस्त हुवा जान मरनेका उद्योग करता है; अब कुछ चिन्ता नहीं ।

जयद्रथ–क्या सत्यही मरनेका उद्योग करता है ?

(एक सैनिकका प्रवेश)

सैनिक–महाराजने कहा है कि, अर्जुन अब चितामें देह भस्म करता है, यदि इच्छा हो तो आओ ।

जयद्रथ–अर्जुन चितारोहण करता है ?

सैनिक–हां महाराज ! चिता सज्जित हो गई; सात्यकिको शिबिरसे युधिष्ठिर द्रौपदी आदिकको बुलानेके लिये भेजा है, सुना है कि, आज सब पाण्डव चितारोहण करैंगे ।

जयद्रथ–(चलो)

शकुनि—वत्स ! कृष्णकी बातका कुछ विश्वास नहीं, सूर्यका अस्त होजाने दो, तब चलेंगे ।

जयद्रथ—जो आपकी इच्छा (सैनिकसे) तुम जाओ मैं अभी आता हूँ (शकुनिसे) मातुल ! चलो सज्जित हो आवें (सैनिकका प्रस्थान । दोनों जाते हैं और जवनिका पतित होती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक तृतीयगर्भांक समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थ गर्भांक ।

स्थान युद्धक्षेत्र ।

(अभिमन्युका मृतक देह पडा है)

(अस्तव्यस्त वेषसे सुभद्राका रणभूमिमें प्रवेश)

सुभद्रा—कहां है ? कहां है ? मेरा अभिमन्यु कहां है रे ? हे मेरा प्राणपुत्र अभिमन्यु कहां है रे ? यह—यह—यह—प्राण व्याकुल होगया ! अब नहीं देखाजाता, हा अभिमन्यु ! हा अभि—(मूर्च्छामें कुछ कालोपरान्त चैतन्य हो) अरे अभिमन्यु ! अरे अभिमन्यु ! कहां गया ? अभागिनी माताको छोडकर कहां चलागया अरे मुझे मा कहनेवाला और कोई नहीं है, अरे अब कौन मुझे मा, मा, कहकर पुकारेगा ? मैं किसका मुख देखकर अपनी आंखें ठण्डी करूँगी, अरे वत्स ! कहां है ? कहां है अरे अपनी माताकी गोद सूनी कर कहां चलागया ? अब जीकर क्या करूँगी ?

बेटा तुम बिन प्राण जात हैं, वेगहि लेहु बचाय रे।
गगन धरनिमें अनल बरत है, पवनहुँ अग्नि समान जरतहै।
आज प्रलयसी होनहार है, क्षण क्षण जिय अकुलायरे॥ १॥
बोलत काकश्वान निशिमाहीं, दिनमें देखिपरैरविनाहिं।
अशकुन होतहजारन क्षण क्षण, कछुनहिं बनत उपायरे॥ २
सूनो सब संसार लगतहै, तासों मोहिं अब जान परतहै।
तुझबिन तेरी अभागिनी मैया बिलख बिलख मरजायरे॥
तू तो पुत्र भूमिमें सोवत, माता खडी तेरे ढिग रोवत।
मा, मा, मोहिं पुकारत नाहीं, कैसी नींद गई छायरे॥ ४॥

पुत्र! क्या यही तेरे शयन करनेकी शय्या है? अरे बेटा! एकवार उठकर तो देख तेरी जननी कबसे तेरे निकट खडी जगा रही है, अरे बेटा! मा, मा, कहकर पुकार। हा पुत्र! तेरे कोमल अंगमें शस्त्रोंके घाव लगे हैं अरे! यह घाव मेरे क्यों नहीं लगे? हाय! मेरी यह कुलिश सम छाती नहीं फबती, नहीं फटती, (वक्षस्थलमें कराघात) यह पत्थरका हृदय नहीं फटता, अरे यह पापी प्राण नहीं निकलता, हे मेरे नेत्रोंके तारे! धूरिमें क्यों बेसुधि पडा है! उठ! उठ तेरे लिये मनोहर शय्या बिछी है, वहां चलकर शयन कर, (कुछ कालोपरान्त) अरे अभिमन्यु! तेरे मनमें यही था यदि मैं जानती कि, तू अपनी जननीको बिलखती छोड जायगा तो मैं उसी समय विष खा लेती. अरे बेटा! मैंने तुझे वारबार बर्जा

था, हा मेरे आलवालप्रवाल ! तू स्वप्नके रत्नकी नाईं दिखाई देकर कहां छिपगया ! प्राणपुत्र मुझे आज सब जगत् शून्यमय दिखाई देता है, पुत्र अभिमन्यु ! पुत्र अभिमन्यु ! अभिमन्यु ! क्या तेरा कोई रक्षक नहीं था ? हाय ! श्रीकृष्ण जिसके मामा धनञ्जय जिसके पिता; उसे सप्तरथी अन्यायसे वध करैं ? पाण्डवोंको धिक्कार है, उनके जीवनको और उनके वीरत्वको धिक्कार है. अरे क्या मेराही सर्वस्व नाश करनेको कौरव पाण्डवोंमें युद्ध हुवा था ! अरे दुरात्मा दुर्योधन ! तैंने जैसे मेरा वंश निर्मूल किया है ऐसेही तेरा वंशभी निर्मूल होगा; यही मेरे प्राण रुदन कर करके कहते हैं कि, रे अन्यायी ! तेरा सर्वनाश होगा, होगा; अवश्य होगा. मेरा हृदय व्याकुल होकर कहता है कि, तू निर्वंश होगा, तेरे वंशमें कोई नाम लेवा और पानी देवा भी न रहेगा जैसे मेरी आत्मा जलती है, इससे चौगुनी तेरी आत्मा जलेगी. अरे निर्दयी विधाता ! तेरे मनमें यही था कि, दुःखिनीको एक रत्नमात्र देकर अवशेषमें वहभी लेलूँ, या मैंने तेरा कुछ अपराध किया था ? अब मेरा संसारमें कोई सगा दृष्टि नहीं आता ।

गीत ।

हे मेरे प्राण मेरे मनकी आशा, लाल कहां तोहिं टेरूं रे ॥
मम अंचल निधि पितु सुखकारी, कहाँ तोहि हेरूं रे ॥
अहो पुत्र सुखदेन मनोहर, कैसे मनको फेरूं रे ॥

महाकठिन दुख परो आनकर, कैसे इसे निबेरूं रे ॥
जो मिल जायँ अश्विनीनन्दन, उनहीं को जा घेरूं रे ॥
शालिग्राम जिवाओ मम सुत, तुम पर फूल बखेरूं रे ॥

(श्रीकृष्णका प्रवेश)

श्रीकृष्ण—सुभद्रे ! तुम यहां क्यों आई हो ?

सुभद्रा—भइया ! मैं लुटगई, मेरा लाल मेरे हाथसे खोया गया; तुम्हारे रहते अभिमन्युकी यह दशा ? तुम्हारे रहते यह अत्याचार ? कि, अन्यायी कौरवोंने इस अन्यायसे मेरे पुत्रका वध किया ! एक ओर एक बालक और एक ओर सप्तरथी, हाय ! यह अन्याय कहां पडेगा ? डूब जायँगे, निश्चय डूब जायँगे, भइया ! मुझे बिदा दो मैं भी अभिमन्युके धोरेको जाती हूँ ।

श्रीकृष्ण—सावधान हो, सावधान हो, शोक मत करो; काल सबको संहार करता है. सत्कुलोद्भव क्षत्रियको जिस प्रकार प्राण त्यागन करने चाहिये, अभिमन्युने उसी रीतिसे आत्मविसर्जन किया. वीर लोग जिस गतिकी अभिलाषा रखते हैं, अभिमन्युने वही गति प्राप्त की, वह महाबलवान् लक्ष लक्ष शत्रुओंका विनाश करके महापवित्र अक्षय लोकको चला गया; सहस्र सहस्र वर्षोंमें महायोगिगण योग साधन तपश्चर्याद्वारा जो गति प्राप्त करते हैं, तुम्हारे अभिमन्युको वही पदवी प्राप्त

हुई. सुभद्रे ! तुम वीरजननी, वीरभागिनी, वीरपत्नी, वीरनन्दिनी, वीरबांधवा हो, तुम्हें अभिमन्युके लिये इतना शोक करना नहीं चाहिये ।

सुभद्रा-(नेत्रोंमें जल भरकर) हे भइया ! मैं तो बहुतेरा मानूं परन्तु मन तो नहीं मानता, मुझे तो संसार अभिमन्यु विना सूनाही दृष्टि आता है, मेरी आंखोंके आगे अन्धकार छा रहा है, क्या मेरी गोदीके बालकके लिये वीरलोक जानेका यही समय था ? क्या उसका कोई रक्षक न हुवा ?

श्रीकृष्ण-सुभद्रे ! वह पापात्मा, बालहन्ता जयद्रथ शीघ्र अपने पापका फल पावेगा; भगिनी ! शोक परित्याग कर रुदन छोडकर आँखोंसे आसू पोंछ डाल ।

सुभद्रा-भइया ! आँखोंसे आसू कैसे पोंछूं ? वह तो सोतकी सदृश हृदय उमडता चला आता है, जो अभिमन्यु सैकडों दास दासियोंके मध्यमें रहता था आज प्राणप्यारा पुत्र भयंकर श्मशानमें अकेला पडा है ।

श्रीकृष्ण-सुभद्रे ! तुम इस स्थानसे जाओ, इस स्थानमें, रहनेसे तुम्हारा मन दूना व्याकुल होगा, इसलिये यहांसे चलो । (सुभद्राको समझा बुझाकर श्रीकृष्ण संग लेगये)

(भीमसेनका प्रवेश)

भीमसेन-भगवान्की महिमाका समझना बडा कठिन है. यह क्या हुवा ? जो कृष्णके सहायक रहते अर्जुनकी प्रतिज्ञा

पूरी न हुई, हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारी माया जानी नहीं जाती अब चलूँ श्रीकृष्णकी आज्ञाको पालन कर अभिमन्युकी मृतक देह ले चलूँ। (भीमसेन अभिमन्युके मृतक देहको लेकर जाता है और परदा गिरता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक चतुर्थ गर्भांक समाप्त ॥ ४ ॥

पञ्चम गर्भांक।

स्थान द्वैपायनहृदका तट।

(गगन प्रान्तमें सूर्य)

(एक पार्श्वमें बृहत् चिता सज्जित)

(एक शिलाखण्डपर अर्जुन दण्डायमान पडा है और एक पार्श्वमें गाण्डीव धनुष धरा है।)

अर्जुन—अभी सन्ध्या नहीं हुई, परन्तु सखा कहते हैं कि, अब युद्धसे कुछ प्रयोजन नहीं। जो कि अपने पुत्रको गोदमें लेकर मर तो जाऊंगा ? न जानिये सखा कब आवेंगे ? कब इस दुःखका अवसान होगा ? (देखकर)हा अभिमन्यु ! हा ! अभि०—(मूर्छा) (अभिमन्युके शवको लिये हुए भीमसेनका प्रवेश)

भीमसेन—अर्जुन ! मैं अपने आपको बडा दृढव्रत समझता था परन्तु आज मेरा भी पाषाणहृदय विदीर्ण होगया. यह

क्या ? हरी ! यह क्या ? तुम जिसके सहायक उसकी यह गति ? (शवको पृथ्वीपर रखकर) वत्स ! व्यूहमें तेरा अनुसरण नहीं करसके थे, परंतु आज अनुसरण करेंगे, पुत्र मैं तुझे नहीं भूला हूँ तेरे लिये जितना अपमान सहा भगवान्‌ही जानते हैं, हा अभिमन्यु !

अर्जुन-(सचेत होकर) हा जीवनआधार ! यह तेरा क्या वेष है ? हृदयनन्दन ! धूरिमें क्यों पडा है ? यह वेश तुझे शोभा नहीं देता, हे सुत ! तुम्हारा प्रतिशोध लेनेको प्रतिज्ञा की थी परन्तु वह पूरी न हुई, चल पुत्र ! चितापर आरोहण कर, तेरा शोकानल निर्वाण करूं, हाय ! सूर्य अस्त होगया । (सूर्यका एकबारही अस्त हो जाना) मेरा चन्द्रमा भी छिपगया अब अन्धकारमय पृथ्वीपर रहकर क्या करना है ? (अभिमन्युके वक्षस्थलमें गिरकर रोदन)

(श्रीकृष्णका प्रवेश ।)

श्रीकृष्ण-(अर्जुनको स्पर्श करके) सखा अब शोक करना वृथा है, अब प्रस्तुत हो, महाराज दुर्योधन, कर्ण, जयद्रथ, दुःशासन और शकुनि आये हैं ।

भीमसेन-(खडे होकर) कृष्ण ! मरना तो निश्चयही है, फिर प्रतिज्ञा अपूर्ण रहते क्यों मर आप अनुमति दीजिये कि, मैं दुःशासनका रक्तपान कर इस गदाघातसे दुर्योधनकी जंघा चूर्ण करूं ।

श्रीकृष्ण–आर्य ! मृत्युकालमें पाप संचय करना नहीं चाहिये ।

भीमसेन–पाप ? यदि प्रतिज्ञा पूर्ण करना पाप है तो पुण्य क्या है ? (युधिष्ठिर, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, नकुल; सहदेव, द्रौपदी, सुभद्रा, सुनन्दा और उत्तराका प्रवेश)

श्रीकृष्ण–(नेत्रोंमें जल भरकर) अब मेरा वृत्तान्त सब सुनो आगे द्रौपदी और पीछे कनिष्ठादि क्रमसे पाण्डव स्वर्गारोहण करेंगे, इनके विरहमें मैं भी अपने प्राण नहीं रख सक्ता; इसलिये मैं प्रथमही अपना देह त्याग करताहूं ।

भीमसेन–यह कभी नहीं होगा मैं विना प्रतिज्ञा पूरी किये शरीर कभी नहीं छोडूंगा; आज्ञा दीजिये मैं सब कार्य करनेको प्रस्तुत हूँ, नहीं तो सबके शेष होनेपर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके जीवन विसर्जन करूंगा. द्रौपदी ! ठहरो; यदि तुम्हारी वेणीका दुःशासनके रक्तसे बन्धन न किया तो नरकमें भी खडा होनेको स्थान नहीं मिलेगा !

श्रीकृष्ण–सखा ! अभी गाण्डीवका त्यागन मत करो ।

भीमसेन–मैं भी गदा त्यागन नहीं करता ?

दुर्योधन–(कुछ हास्यके साथ) अर्जुन ! अब विलम्बका क्या कारण ? सन्ध्या तो कभी की होगइ, द्रौपदी ?

तुम क्यों मिथ्या देह त्यागन करो हो ? तुमने तो कोई प्रतिज्ञा नहीं की ?

भीमसेन–जनार्दन ! आज्ञा दीजिये, अब इन दुष्टोंके कुवाक्य नहीं सहे जाते ।

शकुनि–अर्जुन ! मोह करनेसे क्या होगा ? भ्राता ! प्रतिज्ञाकी रक्षा करनाही वीरोंका कार्य है ।

अर्जुन–सखा अब क्या आज्ञा है ?

श्रीकृष्ण–सखा अर्जुन ! कुछ सन्देह नहीं, धैर्य धारण करो (सहसा गगनमण्डलमें सूर्यका प्रकाश) वह देखो ! अभी सूर्य विद्यमान है, अभी सन्ध्याकालमें बहुत विलंब है, अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा कर (अर्जुनका जयद्रथपर आक्रमण करना और कर्णके बाधा देनेको अग्रसर हो सात्यकिद्वारा आक्रान्त होना फिर युद्ध करते हुए चले गये) (भीमसेन और दुर्योधन धृष्टद्युम्न और दुःशासन सहदेव और शकुनि युद्ध करते हुए चले गये) (जयद्रथका शीघ्रतासे पलायन और अर्जुनका उसके पीछे धावमान होना, उसके पीछे श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, नकुल, द्रौपदी और सुभद्राका प्रस्थान)

सुनन्दा–प्रिय सखी ! तुमभी चलो (हाथ पकडकर)

उत्तरा–सखी ! मुझे छोड दे, जहां मेरे प्राणनाथ गये हैं मैं भी उसी स्थानपर जाऊँगी, अब मेरा पृथ्वी पर कौन है ?

जीवनका साररत्न जो था वह तो अन्तर्हित हो गया, अब मैं अनाथिनी रहगई, पति बिना सतीका जीवन नहीं, बिडम्बनाहै, अब मुझे किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं, सुनन्दा ! तुम घर जाओ; मैं अपने नाथके साथ गमन करूंगी, नाथ ! नाथ !! प्राणनाथ !!! (शव देहको आलिंगन कर)

गान ।

हाय ! प्यारे किधरको सिधारे,
अब रहूँगी मैं किसके सहारे ॥
अब मैं किसके सहारे रहूँगी,
प्राणपति अब मैं किसको कहूँगी ॥
हाय ! यह बिपता कैसे सहूँगी,
मैं यहां अरु वहां मेरे प्यारे ॥
मुझसे क्यों आपने मुँहको मोडा,
मुझको मझधारमें तुमने छोडा ॥
हाय ! सारसकेसा मेरा जोडा,
एक पलमें जुदा होगया रे ॥
चित्तमें है बिथा मेरे भारी,
प्रेम टूटा छुटी आश सारी ॥
मैं तो सब ओरसे आज हारी,
क्या यही था कर्ममें हमारे ॥
कोई हनुमतको झटपट बुलादो,

मुझको बूटी सजीवन मँगादो ॥
मेरे प्यारेके मुखमें चुवादो,
जो अभी जी उठें मेरे प्यारे ॥

उठके सुनन्दाका हाथ पकडकर हे प्यारी !

अश्विनीसुतको ला तू बुलाकर ।
यश लिया जिसने अजको जिलाकर ॥
चाहे मुझपे भी वह कुछ दया कर ।
पीको देंगे जिला वह बिचारे ॥

सुनन्दा–प्यारी ! घबरानेसे क्या होता है ?

धार धर धीरधर मेरी प्यारी ।
बहुत रोरोके जी मत दुखारी ॥
भज हरे कृष्ण गोविंद मुरारी ।
जिसने सब जगत् भय निवारी ॥

उत्तरा–मैं कैसे धैर्य धरूं ?

इक तो हैही उमर मेरी बाली ।
अरु धनीने विपत्ति मुझपै डाली ॥
अब मैं कैसी करूंगी मेरी आली ।
मुझपै यह दुख न जाते सहारे ॥

भूषण सब उतारकर बगेल दिये ।

अब मैं शृंगार किसपर करूंगी ।

मांग सेंदूरसे कैसे भरूंगी ॥
गहने पहने नहीं मैं मरूंगी ।
इससे सब गहने मैंने उतारे ॥
अब यही बात मैंने विचारी ।
मेरा मरनाही ठीक है प्यारी ॥
मुझको लादे गरल या अगारी ।
झगडेही दूर होजायँ सारे ॥

सुनन्दा-अरी उत्तरा ! सावधान हो ।

हाय ! यह क्या बचन तू कहे है ।
मेरी सुन सुनके छाती दहे है ॥
मेरे जीमें न जीव रहे है ।
तू कहे है मँगादे अँगारे ॥

उत्तरा-आंखोंमें आंसू भरकर और सुनन्दाके कन्धे पर शिर धरकर ।

प्यारेके सँग चितामें जरूँगी ।
अब न कहना किसीका करूँगी ॥
मैं मरूँगी मरूँगी मरूँगी ।
मेरी झटपट बनादो चिता रे ॥

अरे पाषाण हृदय ! तू नहीं फटा ? यह महा कठिन कष्ट सह रहा है; क्या इसमें भी अधिक और कोई कष्ट है, जिसके सहनेके

लिये तू इस शरीरको नहीं छोडता ? धिक्कार है तेरे इस शरीरमें रहनेको ! जो प्राणपति चल दिये और तू न चला, अरे निर्लज्ज प्राण ! इतनेपर भी तेरे ध्यानमें कुछ न आया ? हाय मुझ पापिनीको मृत्यु भी स्वीकार नहीं करती, उसको भी मेरा देह स्पर्श करनेसे घृणा आती है, हे जीवनाधार ! अब मैं किसकी होकर रहूँ ? अब मेरा कौन है ? हे जीवनमूल मेरा जीवन तो आपहीके अधीन है, तुम तो मुझको अर्द्धांगिनी बताया करते थे, फिर अपनी अर्द्धांगिनीको अकेली छोडकर क्यों चल दिये, क्या मेरा कोई अपराध था ? अच्छा जो कुछ हुवा सो हुआ परन्तु अब मुझे अपने संग लेलो ।

सुनन्दा–उत्तरे ! कबतक विलाप करोगी ? यह तो जन्म भर दुःख भोगना पडेगा ।

उत्तरा–सखी ! बहुत दिन; नहीं अधिक विलम्ब नहीं मैं अभी संसारसे बिदा होती हूँ; सखी ! मुझे बिदा दो नहीं तो सब संसार मुझको विधवा कहेगा, जगत देखेगा, पृथ्वी देखेगी कि, उत्तराने आज विधवावेष धारण किया, मुझको यह बात कहलानी स्वीकार नहीं मुझको तो संसारके स्त्री पुरुष यह कहैं तो अच्छा है कि, आज अभागिनी उत्तरा संसारसे इस जन्मका शेष कर चली ।

सुनन्दा–प्रिय सखी ! शान्त हो, ऐसा मत कहो ।

गान।

वृथा मत करो शोक संताप।

कोउ न पति कोऊ नहिं दारा, कोउ न सुत काउ बाप ॥ १ ॥ कोउ न शत्रु मित्र नहिं कोऊ, काको करे विलाप ॥ इकलोइ आयो इकलोइ जैहै, बिना कहे चुप चाप ॥ २ ॥ क्षिति-जल-गगन-पवन-पावकको, है सर्वत्र प्रताप ॥ क्षणमें बिलग होत सब सजनी, मिलत आपमें आप ॥ ३ ॥ फिर इनमें कहु कोन तुम्हारो, जाको पश्चाताप ॥ सब तज भज हरि हरि निशि बासर, सर्वोपरि यह आप ॥ ४ ॥ नदी नाव संयोग जगतमें, बिछुरन और मिलाप ॥ इसपर अपनी घनाश्री कोउ, चाहे लेहु अलाप ॥ ५ ॥ काल बली मारनको ठाढो, लिये हाथ शर चाप ॥ शालिग्राम लगाओ उरमें, रामनामकी छाप ॥ ६ ॥

उत्तरा-सुनन्दा! यह बात तेरी सब सत्य है, परन्तु मुझे इन बातोंसे क्या प्रयोजन ? जिसके कारण यह सब व्यवहार था उसीसे बिछोहा होगया. मेरे जीवन आधार प्राण-वल्लभ तो गयेही परन्तु मुझको भी अब गयाही समझो।

सुनन्दा-सखी! जो कुछ होना था सो तो होगया, अब युवराजके मृतक देहका प्रति संस्कार होगा इसका विचार

भले प्रकार कर लो, गर्भवतीको सती होना भी शास्त्रके विरुद्ध है इसलिये और कहीं चलो यहां रहनेसे कुछ प्रयोजन नहीं ।

उत्तरा–मैं कहीं नहीं जाऊंगी, अब यह शरीर प्राणनाथ-हीके साथ भस्म होगा; सखी ! मुझे स्नान कराके चिता रचो ।

सुनन्दा–राजकुमारी ! चलो घरमें स्नान करना ।

उत्तरा–कहां है घर ? कहाँ जाऊँ ? मुझे सब संसार उजाड दिखाई देता है, इस अन्धकारमें कष्ट भोगूं और पतिके संग न जाऊँ ?

गाना ।

बिना पति सूना सब संसार ।
पतिही प्राण पतिहि जगजीवन, पतिही हैं करतार ॥
पतिहीसे पति है या तनकी, पति पति राखनहार ॥
जबलों पति तबहीलों पति है, बिन पति बिपति हजार ॥
जाकी पति पूरन है जगमें, वही धन्य है नार ॥
पति राखे पति रहत जगतमें, मुनिजन कहत पुकार ॥
पतिबिन बिपतिसहूं मैं निशिदिन, जिसमें कोटिबिकार ॥
पति बिन शालिग्राम नारिको, जीवन है धिक्कार ॥

सुनन्दा ! शीघ्र मुझे स्नान करा दे, मैं सती हूँगी–क्या तू भी मुझसे विमुख होगई ? तू यह मेरी अन्तिम बात नहीं मानती हाय ! विधाताके विमुख होतेही सब जगत् विमुख हो जाता है ।

सुनन्दा–सखी ! क्यों मुझे शोकाग्निसे जलावै है ? यह बात बारंबार कहनी नहीं चाहिये ।

उत्तरा–अच्छा तू नहीं जाती ? तो मैं अकेली ही जाती हूँ अब मुझे किसका डर है, किसकी लज्जा है ? जब मैं मृत्यु शरण लेती हूँ तो मुझे लज्जा कैसी ? डर कैसा ? (यह कह जाती है और ठहर ठहर कहती हुई पीछे २ सुनन्दा जाती है और जवनिका गिरती है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक पञ्चमगर्भांक समाप्त ॥ ५ ॥

षष्ठ गर्भांक ।

स्थान रणभूमिका ।

(बहुत दूरपर कौरवोंके डेरे)

(शीघ्रतासे जयद्रथका प्रवेश)

जयद्रथ–यह क्या ? यह क्या ? अंगराज ! अंगराज ! मातुल ! मातुल ! कहाँ हो ? कहाँ हो ? दुर्योधन ! रक्षा कर हाय ! प्राण जाते हैं, यह क्या ? कहां जाऊँ जहाँ जाता हूँ वहां अर्जुन ही अर्जुन दिखाई देता है; अब क्या करूं ? कहां जाऊं ? कल सबने आशा भरोसा दिया था आज कोई पास भी नहीं ! हा! अब क्या करूँ ? प्राण रक्षाका उपाय कोई नहीं दिखाई देता. प्रभो ! आशुतोष ! त्रिनेत्र ! शूलपाणि ! तुम कहां हो. आज रणभूमिमें तुम्हारी वह रजतगिरिनिभ सुन्दर कान्ति क्यों नहीं

दृष्टि आती ? क्या मुझे त्याग करदिया ? हाय ! निश्चयही मेरा मृत्युकाल उपस्थित है, नहीं तो तुम मुझे क्यों बिसारते ? अब मरण तो होहीगा, परन्तु कायर पुरुषोंकी नाईं क्यों प्राण त्यागन करूँ ? सिंधुराजके वंशमें उत्पन्न होकर सामान्य पुरुषोंकी समान दुराचारीके चरणोंमें गिरकर क्यों मरूं ? वीरोंकी नाईं शरीर छोडना चाहिये. (असि निकालकर) अर्जुन ! इधर आ (अर्जुनका प्रवेश) वीरधर्मके मस्तकपर पदाघात न कर, सन्मुख युद्ध कर ।

अर्जुन–अरे वीरकलंक ! यह तेरा धर्मज्ञान कहाँ था ? जब निःसहाय बालकका वध सप्तरथियोंने किया, उस समय यह क्षत्रियधर्म कहां था ? अरे दुष्ट ! अब प्राणभयसे धर्मकी सूझी ।

जयद्रथ–अर्जुन ! निःसहाय बालकके वध करनेमें मेरा दोष नहीं है, मैं तो केवल व्यूहरक्षक था, परन्तु अब मेरी कौन सुनेगा अब इस वृथा बकवादसे क्या प्रयोजन ? आ सन्मुख युद्ध कर "कर्मगति टारी नाहिं टरै', (दोनोंका असियुद्ध) (जयद्रथका खड्ग पृथ्वीपर गिरता है और उठानेके लिये जयद्रथ नीचे झुकता है)

(श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरका प्रवेश)

श्रीकृष्ण–सखे ! दिवाकर अस्ताचलपर आरोहण करते हैं तुम शीघ्र दुरात्माका शिर छेदन करो, अब यह समय हाथ

नहीं आनेका (अर्जुन पाशुपत अस्त्रसे जयद्रथका शिर खण्डन करता है, और सुदर्शनचक्र अपना प्रकाश फैलाता है और पाशुपत जयद्रथका मस्तक लेकर आकाशमें अन्तर्धान होता है)

युधिष्ठिर-भगवन् ! यह क्या आश्चर्य है ? जयद्रथका मस्तक कहां गया ?

श्रीकृष्ण-जहां गया सो देखोगे (शीशका वृत्तान्त सुनाते हैं और पट परिवर्तन होताहै, अर्थात् परदा गिरता है)

इति श्रीअभिमन्युनाटक षष्ठगर्भांक समाप्त ॥ ६ ॥

सप्तम गर्भांक।

स्थान स्यमन्तपञ्चकतीर्थ।

(वृद्धक्षत्र योगासीन)

(जयद्रथके मस्तकका शून्यपथमें आकर वृद्धक्षत्रकी गोदमें गिरना, वृद्धक्षत्रका उस मस्तकका भूतलमें निक्षेप करना और वृद्धक्षत्रका मस्तक विदीर्ण होकर उनकी मृत्युका होना)

युधिष्ठिर-हरि ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है, किसीकी क्या सामर्थ्य है जो जानसकें।

श्रीकृष्ण-महाराज ! जिस योगीकी मृत्यु हुई वह कौन था आप जानते हैं ? वह योगी जयद्रथका पिता था, जब जयद्रथका जन्म हुवा उस समय आकाशवाणी हुई थी, उसका

यह तात्पर्य था कि, तुम्हारा पुत्र सद्गुण सम्पन्न और कीर्तिमान् होगा, परन्तु एक क्षत्रिय प्रधान समरमें उसका शिर छेदन करैगा, तब जयद्रथके पिताने सभामें बैठकर यह वृत्तान्त सबसे कहकर फिर यह वर दिया कि, जो इसका शिर छेदन करके भूतलमें पतित करेगा उसके मस्तकके सौ खण्ड हो जायँगे. यह कहकर जयद्रथको राज्य दे आप तपोनुष्ठानको चले गये; वह इस समय कुरुक्षेत्रके बहिर्भूत स्यमन्तपञ्चक तीर्थमें तपस्या करते थे, वह दिव्यास्त्रसे छेदन कियाहुवा जयद्रथका मस्तक उनके अंकमें जाकर गिरा, उस समय वृद्धक्षत्र सन्ध्योपासन करते थे वृद्धक्षत्रका जप समाप्त न होने पाया आसनसे उठतेही मस्तकके सौ टुकडे हो गये इसी लिये कौरवोंसे अर्जुनकी रक्षा की।

सब सैनिक–जय हरि दयामय! जय भक्तवत्सल!

श्रीकृष्ण–महाराज! आप स्त्रियोंको लेकर शिबिरमें गमन कीजिये, मैं भी पीछे पीछे आता हूँ (श्रीकृष्णार्जुनके सिवाय सब गये)

अर्जुन–अब क्या करना चाहिये?

श्रीकृष्ण–सखा! अब तुमभी विश्राम करो, मैं अब अभिमन्युके मृतक देहका संस्कार करता हूँ।

अर्जुन–श्रीकृष्ण–तुम मेरी श्रवणशक्तिको लोप करो, हां!

इस निष्ठुरकथा सुननेसे पहिले मेरे प्राण क्यों न निकले ? हा पुत्र अभिमन्यु ! तेरा देह आज हम अपने हाथसे आगमें जलावें ?

(श्रीकृष्ण अर्जुनको लेकर जाते हैं और परदा गिरता है)

इति श्रीअभिन्युनाटक सप्तम गर्भांक समाप्त ॥ ७ ॥

अष्टम गर्भांक ।

स्थान द्वैपायनह्रदका तट ।

(प्रज्वलित चिता)

(विधवावेषसे उत्तरा खडी है)

उत्तरा-(चिताकी परिक्रमा देकर)

गान ।

अब जाती हूँ मैं छौड जगको बिन पिया क्या जीजिये ॥
हे पिता, माता, स्वजन, भ्राता, देख मोहि सब लीजिये ॥
हे गुरु श्वशुर कर कृपा यह वरदान मुझको दीजिये ॥
मैं रहूँ पतिके निकट इतनी दया मुझपर कीजिये ॥
हे वासुदेव कृपालु जगन्निवास आनँदनिधि हरी ॥
अब जरतहूँ मैं अग्निमें पति लोथ गोदीमें धरी ॥

हे वैश्वानर ! मै बारम्बार तेरी विनय करूं हूँ, शीघ्र प्रचण्ड हो मेरे देहको भस्म कर । हे प्राणनाथ ! हे प्राणेश्वर ! हे जीवनआधार ! हे प्राणवल्लभ ! मुझे साथ लो, मैं आपके चरणारविन्दकी दासी हूँ (चितामें गिरनेका उद्योग)

गान ।

देववाणी–मत जर अनलमें उत्तरे, तब गर्भ एक कुमार है ॥ सो वंशको कारक महान गुणज्ञ अगम अपार है ॥ त्रयलोकभूषण भक्तवत्सल जगतको आधार है ॥ ऐसाही नामी होय वह, जैसा तेरा परिवार है ॥

उत्तरा–(आकाशकी ओरको देखकर) हाय ! मुझे मृत्यु भी नहीं बूझती ? फिर मुझको अन्धकारके अन्धकारहीमें रहना पडा, प्राणपति ! जीवनमूल ! हृदयेश ! जीवनसर्वस्व ! प्राणना··· (मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरती है, और धीरे धीरे जवनिका पतित होती है)

इस नाटकका नाम वीरकलंक भी है क्योंकि सात वीरोंने एक अभिमन्यु वीरको मारकर कलंक लिया । शुभमस्तु ।

इति श्रीअभिमन्युनाटक शालिग्रामवैश्य मुरादाबादनिवासीकृत अष्टम गर्भाङ्क तथा दशम अंक समाप्त ॥ १० ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण–मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी–मुंबई.

जाहिरात ।

	को. रु. आ.
नाट्यप्रबंध पं० बलदेवप्रसाद मिश्र विरचित नाट्य रचनामें अति उत्तम है	०—५
प्रभासमिलननाटक पं० बलदेव प्रसाद मिश्र विराचित देखनेही योग्य है	०—१२
भारतदुर्दशारूपक	०—३
विधवादुर्दशानाटक	०—२
प्रेमलीलानाटक गोपीनाथकृत शेक्सपीयरका भाषान्तर	१—४
श्रीदामानाटक (अत्यन्त शिक्षारूप)	०—१॥
वीनिसका वैपारी (सेक्सपीयरकृत) अंग्रेजोका अनुवाद एम. ए. कृत	०—१२
अदालतका स्वप्न भाषा	०—२
मृत्युसभानाटक	०—२

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना,
कल्याण—मुंबई.